इतिहास के बोलते पृष्ठ

(शासन-सौरभ)

लेखक

मुनि श्री छत्रमल

●

संपादक

मुनि श्री श्रीचंद

श्री तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह के अभिनन्दन में

प्रकाशक :—
आदर्श साहित्य संघ
चूरू (राजस्थान)

●

प्राप्ति-स्थान —

(१) आदर्श साहित्य संघ
चूरू (राजस्थान)

(२) हीरालाल रामकुमार,
पो० सैन्थिया, जिला—वीरभूम

(३) आदर्श-साहित्य-संघ
द्वारा मन्नालाल हनूतमल सुराना
१९९/५, महात्मा गांधी रोड, कलकत्ता-७

(४) रेफिल आर्ट प्रेस,
३१, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता-७

●

प्रथम संस्करण : १०००
सन् १९६१
मूल्य : २ रुपये ७५ नये पैसे

●

मुद्रक :—
शोभाचन्द सुराना
रेफिल आर्ट प्रेस
३१ बड़तल्ला स्ट्रीट
कलकत्ता-७

अपनी बात

बात संवत् २०१३ फाल्गुन मास की है। आचार्यवर ने द्विशताब्दी अवसर पर साहित्य-निर्माण की प्रेरणा देते हुए अनेक संतों को साहित्य तैयार करने की जिम्मेवारियां सौंपी। आचार्यश्री ने मेरी ओर इंगित किया—क्या साहित्य तैयार करोगे? मैंने अपनी रुचि का उल्लेख करते हुए तेरापन्थ इतिहास के बिखरे पृष्ठों का संकलन करने का निवेदन किया।

आचार्यवर के निर्देशानुसार इतिहास के पन्नों को संजोना शुरू किया। उसी वर्ष जयाचार्य के जीवन की १११ घटनाओं को संकलित कर "जय सौरभ" नाम की राजस्थानी गीतिकाओं में गुम्फित एक कृति तैयार की। सहज वत्सलता पूर्वक मुनि श्री सोहनलालजी ने उसकी घटनाएँ हिन्दी भाषा में लिखकर एक नई परम्परा का श्रीगणेश कर दिया।

संवत् २०१६ में मुनिश्री सुखलालजी का अनशन निकट आने से उनके आत्मीय भाव व वात्सल्य ने मुझे सरदारशहर खींच लिया। सचमुच आचार्य श्री की यह कृपा मन की कुछ आकांक्षाओं को पूरी करने के लिये वरदान सिद्ध हुई। उनके अनशन से पूर्व ही महामना मन्त्रीवर का अप्रत्याशित महाप्रयाण और उनके अन्तिम उच्छ्वास के समय एकदम सान्निध्य—एक सुदीर्घ कल्पना को सम्पन्न कर गया। घोर तपस्वी मुनि का अनशन! सेवा-स्वाध्याय का उल्लास पूर्ण वातावरण! और इन्हीं हाथों में अनशन की संपन्नता—सचमुच वे सुखद स्मृतियां अब भी कभी-कभी मन को झकझोर देती हैं।

एक दिन मनमें आया क्यों न शासन की इन सुखद घटनाओं को यहीं पर संकलित कर लिया जाए! शासन का जीता-जागता इतिहास मन्त्री

मुनि के रूप में जो विद्यमान है और अनेक प्रसिद्ध अप्रसिद्ध घटनाओं की प्रामाणिक जानकारी संजोए मुनिश्री सोहनलालजी के सहज संयोग ने मेरे इस प्रयत्न में सहकारी बनकर इसकी प्रामाणिकता को भी सुस्थिर बना दिया। श्रावक गणेशदासजी गधैया व महालचन्दजी सेठिया द्वारा संकलित शासन के अनेक महत्वपूर्ण इतिवृत्त यहाँ उपलब्ध थे। कुछ संयोग ऐसा था जो इस कार्य को पूरा करवाना ही चाहता था। इस प्रकार संवत् २०१६ की पोष वदी १० (पार्श्व जयंती) के दिन "शासन सौरभ" नाम से लगभग दो सौ पद्यों की कृति रूप में आचार्यवर की अनुज्ञा का यह सक्रिय स्वीकरण सम्पन्न हुआ। इसमें १३ तर्जें इस प्रकार चुनी हैं जो हर पद्य को अपनी लय में पूरा बिठला सकती हैं, सिर्फ ध्रुवपद का अन्तर पड़ता है जिन्हें अलग परिशिष्ट रूप में दे दिया गया है।

बीदासर में आचार्य श्री ने "शासन-सौरभ" की घटनाएँ लिखकर शीघ्र तैयार करने का इंगित दिया। जिसके अनुसार मुनि श्री श्रीचन्दजी ने इसका श्रमपूर्ण संपादन किया। द्विशताब्दी के शुभ अवसर पर दोसौ संस्मरणों के रूप में "इतिहास के बोलते पृष्ठ" जो तैयार हुआ है—वह बहुतों के सहयोग व श्रम का निश्चित परिणाम है। परम्परा-पालन के लिये सभी के प्रति कृतज्ञता व आभार प्रदर्शन कर मुक्त हो जाऊँ, ऐसा है तो नहीं किन्तु फिर भी आत्म-संतोष का भाव तो है ही।

आषाढ़ सुदी १० सोमवार
संवत् २०१६
चूरू (राजस्थान)

—मुनि छत्रमल

प्रज्ञापना

आचार्य श्री भिक्षु एक क्रान्त द्रष्टा महापुरुष थे, साधना शील सन्त थे, तत्व-निष्णात मनीषी थे, कुशल चर्चावादी दार्शनिक थे, लोकोद्बोधक युगपुरुष थे, सफल व्यवस्थापक थे, नियन्ता थे। सयम और अध्यात्म के शाश्वत स्नेह से उनका जीवन-दीप छलाछल भरा था, सत्तत्वदर्शन के रूप में जिसकी अमर ज्योति आज भी सतत उद्दीप्त है। यह कहना अतिरञ्जन नहीं होगा, उनके जीवन का क्षण-क्षण एक नए इतिहास की सृष्टि कर रहा था। उनका जीवन वस्तुतः घटना-सकुल जीवन था। पग-पग पर घटनाओं का तांता जुड़ा रहता—कहीं विरोधियों से भेंट होती, कहीं चर्चावादी मिलते, कहीं वेष विडम्बियों से पाला पड़ता, कहीं कुरूढियों से टक्कर होती, कहीं जिज्ञासु और आत्मार्थियों से साक्षात्कार। इन बहुविध घटनाक्रमों के शाण पर संघृष्ट उनका विराट् व्यक्तित्व और अधिक निखार पा गया था। उनके जीवन से जुड़ा इतिहास जहाँ एक महान् साधक के ज्योतिर्मय जीवन की झाँकियाँ प्रस्तुत करता है, वहाँ तत्कालीन समाज की मनोदशा तथा धार्मिक, नैतिक, व्यावहारिक परम्परा व स्थिति पर भी पर्याप्त प्रकाश डालता है। मुनि श्री छत्रमल जी द्वारा लिखित "इतिहास के बोलते पृष्ठ" नामक यह पुस्तक आचार्य भिक्षु के जीवन से सबद्ध गरीमामय इतिहास का एक सुन्दर एवं समीचीन लेखा-जोखा है।

मुनि श्री छत्रमल जी लेखनी के धनी हैं, व्युत्पन्न मनीषी हैं, सन्त-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। अपने अध्यात्म-नायक जनवन्द्य आचार्य श्री तुलसी के सन्निर्देशन में जन-जन में अध्यात्म-भावना और सात्विक जीवन-चर्या के सचार का अभिप्रेत लिए अनेक पद-यात्राएँ उन्होंने की हैं, कर रहे

हैं। वे लोक-मानस के अध्येता हैं। प्रस्तुत पुस्तक की रचना में लोकोपयोगिता एवं लोकव्यनीनता की ओर उनका ध्यान विशेष खिंचा रहा है। अत्यन्त सरल और मनोरम भाषा में उन्होंने आचार्य भिक्षु के उत्क्रान्तिमय जीवन से जुड़ी घटनावलियों को शब्दबद्ध कर जन-जन के समक्ष उस महामानव के जीवन-वृत्त के महनीय प्रसंगों को दर्पण की तरह रख दिया है।

आदर्श साहित्य संघ की ओर से प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन करते हमें अत्यधिक प्रसन्नता है। आचार्य भिक्षु के सर्वतः उद्बुद्ध और उत्क्रान्त जीवन का दर्शन पाने में यह पुस्तक पाठकों के लिए बड़ी लाभप्रद सिद्ध होगी, ऐसी आशा है।

१६ जमुनालाल बजाज स्ट्रीट,
कलकत्ता–७

जयचन्दलाल दफ्तरी
व्यवस्थापक

विषयानुक्रम

★

अतीत के अंचल में

जो भविष्य में उनके द्वारा होने वाली क्रान्ति मे सिंह सी पराक्रमशीलता का सूचक था। आपके शरीर पर अनेक शुभ चिह्न थे जैसे—दाए पैर मे उर्ध्वरेखा, दाए हाथ मे मच्छरेखा, दशों अंगुलियों पर चक्र तथा पेट पर स्वस्तिक एवं ध्वजा का चिह्न—अंग-विद्याविशारदों के सामने "होनहार विरवान के होत चीकने पात" का स्पष्ट प्रमाण था यह !

---

* नोट—शासन-सौरभ के पद्यों को १३ तर्जों में से किसी भी एक में गाया जा सकता है जिनकी विस्तृत सूची परिशिष्ट मे देखो।

: ३ :

भूल के लिए शूल

घाल पाग बंबूल शूल झट काकै नें समझायो।
"माथे ऊपर लो मिलतां ही कुण नही रस्ते आयो" ॥ १ ॥

श्री भीखणजी जब किशोर थे, तब उनकी उठ बैठ चाचा के पास थी, अक्सर पास मे आते ही चाचा दो-चार चाटे उनके शिर पर जमा दिया करता। भीखणजी ने कई बार ठंडा-मीठा करके समझाया पर आदत की लाचारी छूट नहीं सकी।

उन दिनों मारवाड़ के छोटे-छोटे बच्चे भी शिर पर पगडी बाधते थे। उस दिन श्री भीखणजी भी पगड़ी बाधकर चुपके से चाचाजी के पास आ बैठे। चाचा ने आव देखा न ताव ज्योंही शिर पर चपत जमाने को हाथ कसकर पगडी पर गिराया तो बबूल की वे नुकीली शूलें उनके हाथ मे चुभ गई।

चाचाजी कराह उठे—अरे भीखण! यह क्या किया?

वे होठों मे ही मुस्कराते हुए दौडते बोले—चाचाजी! यह तो भूल के लिए शूल की सजा ..।

: ४ :

धूर्त कौन ?

ढोंग्या को हो कट्टर दुश्मण भीखण चौडै धाण।
मजनो नाम बता ढोंगी को तुरत माजनो फाडै॥ ४॥

श्री भीखणजी के पडोस मे एक चोरी हो गई। चोर का कोई अतापता नहीं मिला। मुहल्ले वाले इकट्ठे होकर उस अंधे कुम्हार के पास गए जिसने यह ढोंग बना रखा था कि—मेरे मुँह देवी बोलती है और बोले—बाबा। चोर का नाम दो। वह आख का अन्धा होते हुए भी गाठ का पूरा था! रात को अखाड़े में आया। गुनगुनाते हुए आव ताव मे आकर बोला—डालदे रे डालदे गहने डालदे!

बाबा! चोर का नाम खोलो—लोगों ने कहा।

अरे मजना! डालदे गहने। अब तेरी खैर नहीं है—अन्धे ने घूरकर कहा। वहाँ बैठे अतीत का शिर चकराया। अरे यह क्या माजरा है? मेरा मजना (जो उसके बकरे का प्यारा नाम था)। क्या तो चोरी करेगा क्या डालेगा?

श्री भीखणजी वहीं पर खड़े-खड़े यह नाटक देख रहे थे आगे आए और वावा की कलई खोलते हुए वोले—आख का अन्धा तुम आँख वालों को कैसा चकमा दे रहा है ? अभी रात को इसने मुझसे पूछा—चोरी पर तुम्हारा क्या अन्दाज है ? किस पर वहम करते हो ? तव मैंने ही इसका पर्दाफाश करने के लिए मजने का नाम वतलाया था।

सूरदास वावा के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगी—अरे भीखण ! तुम तो धूर्त निकले !

वावा ! धूर्त मैं हूँ या तुम ?

—[भिक्षु दृष्टांत १०६]

: ५ :

व्यसनी की दुर्दशा

दुर्व्यसनी की हुवै दुर्दशा सूँध्यो महिपी छाणो।
भूल चूक भी दुर्व्यसनी नैं नडै नहीं वसाणो ॥ ५ ॥

काफी लम्बा रास्ता पार करना था श्री भीखणजी को। एक ऐसे तमाखू के गुलाम ठाकुर साहब से पल्ला पड़ गया जो बिना तमाखू के एक पैर भी चलने में असमर्थ हो गया। श्री भीखणजी ने काफी समझाया बुझाया पर वह तो टस से मस नहीं हुआ। आखिर श्री भीखणजी ने इधर-उधर घूमकर कुछ कण्डे जलाकर उनकी बुकनी बनाई और उसकी पुडिया ठाकुर के हाथ में थमाते हुए बोले—बाबा! तमाखू कुछ ऐसी-वैसी ही है।

कोई बात नहीं काम चल जाएगा और मसलते हुए सूंघ फाक कर खंखारा, चलो अब तैयार हूँ। ठाकुर को साथ लिए गाव में पहुँच गए उन्हें उसकी व्यसनी बुद्धि पर तरस आने लगी, व्यसन के कारण बुद्धि कितनी कुण्ठित हो जाती है।

[भिक्षु दृष्टान्त १११]

: ६ :

आत्म-परीक्षण

आत्मार्थी वण करी परीक्षा पी धोंवण कैरा रो।
गचर पचर में निज जीवन ने जिको गमावै क्यारो ॥ ६ ॥

मुनिचर्या की कठिनता बतलाते हुए कहा जाता है कि मोम के दांतों से लोह के चने चबाने पड़ते हैं। श्री भीखणजी ने इस असि-धारा व्रत पर चलने की क्षमता को तोलने के लिए एक आत्म-परीक्षण किया। कैर का ओसाया हुआ जल लेकर एक तावे के लोटे मे राख डालकर हण्डियों की जेट मे रख दिया। कुछ देर बाद उसे निकाल कर पीया तो बड़ा कड़वा व बेस्वाद लगा, पर ऐसे नीरस आहार पर जीवन भर रहकर भी साधना करने की उन्होंने ठान ली। दीक्षा के ४३ वर्ष बाद इस घटना की चर्चा करते हुए अपने प्रिय शिष्य हेमराजजी स्वामी से बोले—"आज तक वैसा नीरस जल पीने का मौका नहीं आया"। साधना-पथ पर इतनी पूर्व तैयारी के साथ बढ़ने वाले आप आचार शैथिल्य के साथ कैसे समझौता कर सकते थे—हेमराजजी स्वामी ने श्रद्धा स्निग्ध शब्दों में कहा।

[भिक्षु दृष्टान्त १०७]

काला हूं तो क्या ?

वै ही कान्ति करै जगत मै (जो) अन्ध रूढ़ियां तोड़ै ।
झूठी गाल्यां सुणी सासरै भीखण भाणो छोडै ॥ ७ ॥

अनुभूतियों की तीव्रता से ही संस्कारो के बीज जमते है । और वे ही भविष्य में फलित होकर नये फल लाते है । श्री भीखणजी शुरु से ही इतने क्रात द्रष्टा थे कि अन्ध रूढियों का डटकर विरोध करते । जब वे अपने ससुराल में लंगड़ साले के साथ भोजन कर रहे थे तो अन्दर से औरतों ने गीत गाने शुरू किए जिनमें गाती थी—"ओ तो कालो घणो नै कावरोजी लाल" स्वामीजी ने विरोध करते हुए कहा—ये क्या गारही है अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा ! मैं काला हूँ तो क्या हुआ लंगडा तो नहीं हूँ · ? और तत्क्षण बीच मे ही उठ गए कि गाने वाली अपने आप सहम कर चुप हो गई ।

स्वामीजी ने इन्हीं रूढ़ियों पर अपनी कृतियों मे कई जगह आध्यात्मिक व्यंग कसा है ।*

[भिक्षु दृष्टान्त १०५]

* नारी लाज करै धणी न दिखावै मुख नै आख
पण गाल्या गावण बैठी जणा जाणै गावा दीधा नाख

[चेड़ाकोणिक व्याख्या]

: ८ :

कटारी क्या पूरी है

झूठो हेत दिखावण दुनिया बोलै लंबी चोड़ी।
ढींग हाकणी सोरी किन्तु कटारी खाणी दोरी ॥ ८ ॥

अन्तश्चेतना जागृत होने के बाद भय व प्रलोभन आदि की कोई भी प्रतिरोधी शक्ति उसे भेद नहीं सकती। श्री भीखणजी ने जब दीक्षा लेने का विचार घरवालों के सामने प्रकट किया तो घर में एक हलचल मच गई, अनेक कठिनाइयां उनके सामने आईं। स्वामीजी की भुआने बन्दर घुरकी देते हुए कहा—'यदि तुम दीक्षा लोगे तो मैं पेट में कटारी खाकर मर जाऊँगी"। पर वे कब डरने वाले थे, बड़ी फक्कड़ता से बोले—"कटारी क्या कोई पूड़ी है कि कोई उसे पेट में खा डाले ? इस प्रकार के झूठे ढोंग पर कभी-कभी वे बड़े कठोर हो जाते"।

[भिक्षु दृष्टान्त २४०]

: ६ :

गुरु की भविष्यवाणी

भांत-भांत रघुनाथ मात ने समझावण नै लाग्या ।
"सदासिंह ज्यूं ओ गूंजेला" दे दे तूं तो आज्ञा ॥ ९ ॥

श्री भीखणजी ने जब आचार्य रघुनाथजी के पास दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की तो वे खुद ही उनकी मा दीपा बाई से आज्ञा दिलवाने के लिए प्रयत्न करने लगे।

मेरे सिंह स्वप्न के अनुसार भीखण के भाग्य में साधु होना नहीं कोई वैभवशाली पुरुष होना लिखा है—मा ने अपनी सुनहली आशाओं की ओर इंगित किया। तुम्हारा स्वप्न मिथ्या नहीं होगा—"यह होनहार पुत्र साधु बनकर निश्चय ही सिंह की नाई दहाड़ेगा"—गुरु ने यह भविष्यवाणी की जो अक्षरशः सत्य निकली !

वे भले ही कोई वैभव सम्पन्न सेठ दीवान या नरेश न बने हो पर आगम की भाषा में ऋद्धिसन्त भावितात्मा "अणगार" के रूप में अवश्य ही विश्व के सामने प्रगट हुए।

[भिक्षु यशरसायन ढा० १।१६।१७]

: १० :

ताप भी संतापहारी

"सावचेत हुवै हो वण वालो कर्म वदनी भाख्या" ।
ताप चढ्या सताप वढ्या उघडी भीखण री आख्या ॥ १० ॥
"महापुरुषा कै हुवै न किंचित् भूठी खींचा ताणी" ।
थे हो साचा म्हे हा भूठा मिण्यो श्रावका पाणी ॥ ११ ॥

संवत् १८१५ की बात है। राजनगर के कुछ श्रावकों ने साधुसमाज की, आचार-विचार की शिथिलता से खिन्न हो उन्हें वन्दना-नमस्कार करना बन्द कर दिया। आचार्य रूघनाथजी ने अपने विचक्षण शिष्य भीखणजी को श्रावक-वर्ग को समझाने के लिए राजनगर भेजा। श्री टोकरजी, हरनाथजी, वीरभाणजी और भारीमालजी—ये चार साधु उनके साथ थे। अपने उत्कट् वैराग्य और सूक्ष्म प्रज्ञा के बल पर भीखणजी ने श्रावक-जन का शिर अवश्य झुकवा लिया पर हृदय नहीं झुका सके।

रात को उन्हें ज्वर हो गया। चिंतन की भूमिका पर गुरु की टेक और मिथ्या आत्म-सम्मान की दीवार से सत्य की दुर्धर्ष टक्कर होने लगी, रात ज्यों-ज्यों बीतने लगी ज्वर का

वेग तीव्र होता गया। शरीर के ताप के साथ मन का संताप और भी तेज हो गया। अंधेरी रात में चिंतन के सहस्रो स्फुलिंग उछलने लगे—हाय! मैंने सत्य का गला घोंट कर दुनिया को धोखा दिया है। असाधुता के हलाहल पर साधुता का मधुलिप्त ढक्कन डालकर श्रावकों को छला है और उन्होंने सकल्प किया—प्रातः श्रावक-समाज के सामने स्पष्टतः अपनी दुर्बलता को स्वीकार करके सत्पथ पर चलने की चेष्टा करू गा। इसके लिए मुझे संघ गुरु व अपनी देह का भी मोह छोडना होगा तो छोड़ूगा।

पश्चात्ताप की भट्टी पर चढ़कर उनका सत्य-स्वर्ण निखर उठा। उनका ताप भी कोटि-कोटि जनता के लिए संतापहारी बन गया। असत्य को त्याग कर सत्य को स्वीकार करने के आत्म साहस मे श्रावकवर्ग ने उनकी महान् आत्मा के दर्शन किए ।

[भिक्षु यशरसायन ढा० २].

: ११ :

आत्मार्थ सकलं त्यजेत्

चैत्र शुक्र नवमी दिन नीको अष्टादश सोलैंको।
मुधरी में मुधड़ी में चाल्या छोड़ मोह टोलै को॥ १२॥

संवत् १८१६ (जैन परम्परानुसार) चैत्र सुदी नवमी पुष्प नक्षत्र शुक्रवार के मध्याह्न की मंगल-वेला में उनके क्रांत चरण— गुरु के मोह, संघ के सम्मान और प्रतिष्ठा को ठोकर मारकर अन्तः श्रेयस् के महापथ पर बढ़े। उनका पहला विश्राम ठाकुर जैतसिंहजी की छत्रियों में हुआ। विचारकों ने दृष्टिराग को सब से बड़ा बन्धन माना है किन्तु उनकी आत्म कल्याण की तीव्र-भावना के सामने इसका कोई मूल्य नहीं था। सुनिश्चित प्राय युवाचार्य पद का प्रलोभन भी उनके गतिमान चरणों को रोक नहीं सका[१]।

[भिक्षु यशरसायन ढा० ५]

: १२ :

रीस भी आशीष

आगो थारो पाछो म्हारो लोक लगास्यूं लारै।
कही रीस मैं पण आशीषां बणगी चोडै धाडै ॥१२॥

जैतसिंहजी की छत्रियों पर स्वामीजी का पहला पड़ाव हुआ। गुरुजी ने नरम-गरम, कड़ुआ-मीठा, बहुत-बहुत कहा। पर मोह की झंझा और भय के तूफान से भी जब उनकी आत्मा न कंपी, न हिली तो गुरुजी झल्ला उठे—"देख भीखण! तू मेरी बात नहीं मानता है। समझ ले तेरी खैर नहीं है तेरे पीछे लोगों को लगा दूंगा। आगे-आगे तू और पीछे-पीछे वे"। गुरु की यह क्रोध भरी वाणी भी आशीर्वाणी सिद्ध हुई—स्वामीजी के जीवन में।

---

*फिर बोल्या स्वामीजी नै जाणी [illegible]
आगो थारो नै पाछो म्हारो लोग लगास्यूं [illegible]

[भिक्षु [illegible] ५ [illegible]]

: १३ :

तीन घर वधाई

आत्मार्थी नै धन परिजन को मोह न कभी सतावै
अन्त हार कर आहार करावण कित्नो सुत ले आवै ॥१४॥
"चातुर मानव एक काम में काम घणा का सारै"
तीन घरा में कर्‌या वधावा देखो चोडै धाडै ॥१५॥

भिक्षु स्वामी ने अलग होने के वाद जब नई दीक्षा लेने का विचार किया तो उनके साथ आये हुए संत भारीमालजी के पिता कृष्णोजी भी थे। कृष्णोजी की प्रकृति उग्र होने से स्वामीजी अपने साथ रखने से इन्कार हो गए। इस वात पर वे झुंझलाए—अपने पुत्र को भी साथ ले जाऊंगा। इस पर स्वामीजी ने कोई आपत्ति नहीं की। किन्तु भारीमालजी स्वामी जाने को तैयार नहीं हुए क्योंकि वे १० वर्ष की उम्र में स्वामीजी के हाथों दीक्षित होने के वाद अव तक चार वर्षों से उनके साथ थे अव उन्हीं के चरण चिन्हों पर चलकर आत्म-साधना के पथ पर कटिवद्ध हुए थे। तभी तो पिताजी के

जवर्दस्ती ले जाने पर उन्होंने प्रतिज्ञा कर डाली – "तुम्हारे हाथ से अन्नजल लेने का त्याग है।" तीन दिन निकल जाने पर पुत्र के सत्याग्रह के सामने पिता को झुकना पडा और स्वामीजी के सामने—गुरुदेव ! यह तो आपसे ही राजी है—इसे अपने पास रख आहार-पानी करवाइए, किन्तु मेरा भी कहीं ठिकाना लगा दीजिए।

भिक्षु स्वामी ने कृष्णोजी को आचार्य जयमलजी के पास भेज दिया। स्वामीजी की इस सूझ-बूझ से खुश हो जयमलजी बोले—देखो भीखणजी का चातुर्य ! तीन घर बधाइया बाट दी ! अपनी तो आफत मिटाली, कृष्णोजी का ठिकाना लगा दिया और हमें एक चेला दे दिया ।

[भिक्षु दृष्टान्त २०३]

: १४ :

बड़े नम्र होते हैं

चरण ज्येष्ठ थिरपाल फतह नै आप बड़ा ही राख्या।
आंख खोलकर श्री भिक्षु की निरभिमानता भाख्या ॥१६॥

अपने बारह अन्य सहयोगियों के साथ स्वामीजी ने क्रांति-पथ पर पहला चरण रखा। आचार्य भीखणजी के थिरपालजी, फतेहचन्दजी, टोकरजी, हरनाथजी और भारीमालजी—ये पाच तो जीवन भर साथ रहे। अन्य सात वक्तोजी, गुलाबजी, वीरभाणजी, लिखमीचन्दजी, भारमलजी, रूपजी और प्रेमजी कई कारणों से अलग-अलग बिखर गए। इनमे पांच रुघनाथजी के, छह जयमलजी के और दो अन्य सम्प्रदाय के थे। जयमलजी के सम्प्रदाय के साधुओं मे दो साधु थे थिरपालजी और उनके पुत्र फतेहचन्दजी। वहाँ भी स्वामीजी से दीक्षा में बड़े होने के कारण यहाँ पर जब नई दीक्षा ली तो स्वामीजी ने कहा—"सब मुझे वन्दना करेंगे किसी को तो मैं भी वन्दना—नमस्कार करूँ। इसलिए आप दोनों को मैं अपने से बड़ा ही रखूँगा।" यह है उनकी महानता की पहली सीढ़ी जो नम्रता से शुरू होती है।

[भिक्षु यशरसायन ढाल ७,४४ दोहा ३।८]

: १५ :

जाको राखे साइयां

आपो आप सांप मर ज्यासी नहीं टूट-सी लाठी।
भीखण नै अंधारी ओरी ठहराया मति माठी ॥१७॥

सुधरी से बढते-बढते बरलु जोधपुर होते हुए स्वामीजी केलवा के चौराहे पर पहुँच गए—ठहरने के लिए कोई स्थान मिलेगा यहाँ ? इस प्रश्न पर जैसे गम्भीर होकर सोच रहे थे। गाव के ओर-छोर का चक्कर लगाने पर भी किसीने आगे-आगे के सिवाय कोई उत्तर नहीं दिया। आखिर एक व्यक्ति ने गाव वालों को एक खुरापात सुझाई—भीखणजी को अन्धारी ओरी (आदिनाथ मन्दिर) मे ठहरादें तो साप भी मर जाएगा और लाठी भी नहीं टूटेगी॰ ।

हाँ! हाँ! कह सभी ने बडी प्रसन्नता के साथ मान भीखणजी को वहाँ ठहरा दिया। शायद यहीं पर उनकी समाधि बनाना चाहते हो ? पर सुबह होते-होते लोगों ने देखा कि वे आनन्द से इधर-उधर घूम रहे है किसीका बाल भी बाका नहीं हुआ।

कहते हैं कि स्वामीजी राजनगर जा रहे थे पर नदी आने से वहीं रुकना पडा।

: १६ :

अंधेरी ओरी में

होण हार बालक रो होवै रंग ढग ही न्यारो।
पग रै आटा दिया सर्प पण कर्‌यो नहीं चुंकारो ॥४८॥
अन्धारी ओरी में भारी टलगी आफत आती।
देव बण्यो पखपाती देखी व्वर की सी छाती ॥४९॥

अंधेरी ओरी मे निर्भय बने आनन्द से धर्म-जागरण कर रहे थे स्वामीजी। बालक साधु भारीमालजी जब देह-चिंता के लिए बाहर गये तो वहीं रुक गए लौटे नहीं। स्वामीजी उठकर निकट आए और बोले—भारीमाल क्या बात है? भारीमालजी स्वामी ने सहज भाव से कहा गुरुदेव! लगता है किसी नाग जाति ने आकर पैरों में आटे लगा दिए है। यह तेरह वर्ष का बालक! अन्धेरी रात! सुनसान स्थान! और यह भयावना नाग!! न जाने कितनी बातें एकाएक उनके सामने आई जो बालक की होनहारता को बतला रही थीं। स्वामीजी

नजदीक आए और णमुकार मंत्र का उच्चारण किया, नाग देव ने आटे खोलकर अपना रास्ता लिया और बालक साधु अचपल अक्षुब्ध से आकर निर्भय लेट गए।

नीरव वातावरण में बैठे स्वामीजी आत्म-चिन्तन की गहराई मे उतर रहे थे। अन्धकार को चीरता हुआ एक प्रकाश पुँज उनके चरणों मे विनयावनत हो उपस्थित हुआ। स्वामीजी की आखें जैसे रहस्य को पा चुकी हो बोले—देवानुप्रिय! इस मन्दिर के अधिष्ठायक हो? यदि तुम्हारी अनुमति नहीं तो हम क्षण भर भी नहीं ठहरना चाहते।

नहीं-नहीं भगवन्! आप कृपा करके ठहरें। मैं आपकी सेवा मे उपस्थित हूँ।

तो फिर इस प्रकार का उपद्रव क्यो? क्या कोई परीक्षा है?

अब नहीं होगे सिर्फ दो सूचनाएँ है—

एक—जिधर सर्प की लकीर मिले उस ओर कुछ फेंके नहीं।

दूसरी—सामने की इस चौकी पर आपके सिवाय और कोई न बैठे। एक पर से मैं आपकी सेवा करूगा। आप आनन्द से विराजें। इसी जगह विक्रम संवत् १८१७ आषाढ़ी पूर्णिमा ई० सन् १७६०, २८ जून शनिवार को आपने नई दीक्षा लेकर तेरापथ की नींव डाली।

(१७) क्रांति के मंहगे मूल्य

खान-पान के कष्टां स्यूं कद आलायॉ घबरावें।
घी गुड़-शक्कर तो पाली में बिकतां नजरां आवें ॥२०॥

जब किसी ने पूछा—गुरुदेव ! भिक्षा में कभी घी, गुड़, शक्कर, दूध आदि प्राप्त भी होते हैं। तो स्वामीजी ने इस वक्रूवी से उत्तर दिया—हां पाली जैसे शहरों की दुकानों में बिकता तो देखते हैं। संसार क्रान्ति करने वालों को हमेशा भूखों मारता है और उनकी समाधियों पर घी, दूध, मिष्ठान्न के भोग और फूल मालाएं चढ़ाता है। आचार्य भिक्षु क्रान्तिकारियों की इसी परम्परा की मूल्यवान् कड़ी थे जिन्हें पांच वर्ष तक तो प्रायः भूखे पेट रहकर अपनी क्रान्ति के मंहगे मूल्य चुकाने पड़े।

पांच वर्ष पहिछाण रे, अन्न पिण पूरो ना मिल्यो।
बहुल पणें बच जाण रे घी चोपड़ तो किहां रह्यो ॥

[भिक्षु जश रसायन ढा० १०]

: १८ :

तूफानों के दिन

एक एक रोटी की ही सामायक ग्यारै ग्यारै ।
नणदी की गलज्या सामायक दियां पातरै थारै ॥२१॥
कोड़ कसाया स्यू भी खोटा निन्हव अष्टम बाज्या ।
मांहै काला बारै काला कहता लोक न लाज्या ॥२२॥
सिरी संघ री आण दुहाइ जाग्या हेत दिराई ।
इसडै युग मै भी तो देखो आखिर फली सच्चाई ॥२३॥

उनके विरोध की शुरूआत ही बड़ी भयंकरता से हुई। गाव गाव में यह घोषणा कर दी गई कि भीखणजी को रोटी देने वाला ११ सामायक का दड पायेगा। साधु जब भिक्षा के लिए जाते तो उनको पूछा जाता तुम भीखणजी के चेले हो? हाँ—मे उत्तर पाकर बहनें झल्ला उठतीं अगर तुम्हें रोटी दे दूं तो स्थानक में करने वाली मेरी ननद की सामायक गल जाए

('भ्रष्ट हो जाए)। यह आग-सा उत्तर पाकर हिम से शीतल साधु गरम भले ही न हों पर लोगों की मूढ़ता पर पिघल जरूर जाते।

भिक्षु स्वामी से किसी ने कहा—वे तुम्हें क्रोड कसाइयों से भी बुरा बतलाते हैं। तो स्वामीजी हंस उठते—ठीक ही है कसाई सिर्फ बकरे काटता है हम ढोंग की पोल खोलकर उनके चेलों को फाटते हैं न?

जब कोई उनकी सचाई से जल भुन कर तिलमिला उठता तो कह डालता—भीखणजी जैसे बाहर काले हैं वैसे ही अन्तर में काले है, तो शायद क्षमाशूर स्वामीजी मन ही मन मुस्कराते होंगे, "तुमसा बगुला तो नहीं?"

उनको निन्हव—धर्म-शासन द्रोही सिद्ध करने के लिए मत-वादियों ने ग्रन्थों के बीच मन गढ़न्त पाठ जोड़कर आठवां निन्हव बताया। जिस गाँव मे वे जाते तो पहले ही उनकी सूचना गाँव के घर-घर मे हो जाती—भीखणजी को स्थान न देना—श्री संघ की आण दुहाई है।

इन सब तूफानों के सामने वे डटे रहे सत्य की साधना पर और एक दिन वह फलवती बनी।

अट्ठाये निन्हवो होई भिक्खाए वणी पुत्ताए।
कंटय गान वासन्ति तेण जाणवि गोयमा ॥१॥
ए ए पंचमे कालेइ दुपइस्स काले भई।
तेइस्स काई वइस्से तेण निन्हवो होई ॥ २ ॥

रघनाह गुरु होई वहुल कम्म जीवाणं।
नेरिया सवबज्जति अणुकपा उवट्टिए ॥ ३ ॥
सायरग निन्हवाए अधीए पावि मिक्खाए।
तेण कहति गोयमा होई धम्म विछोहए ॥ ४ ॥
(सिद्ध पाहुड़िया मे प्रक्षिप्त गाथाएं)

अर्थ—हे गोतम ! कन्टालिया ग्रामवासी वणिक पुत्र भीखण आठवा निन्हव होगा—१

दुःषम पाचवे आरे मे वह अपने तेवीस वर्ष की अवस्था मे प्रगट होगा—२

रघनाथजी का शिष्य वहुल कर्मी जीव दया को उठाकर नारकी में जायगा—३

सात निन्हवों से भी अधिक पापी भीखण; जिससे धर्म का विच्छेद होगा—४

× × × × ×

: १६ :

इस हाथ दो उस हाथ लो

घृत युत घाट ठाट स्यू लेकर देकर गाल्या तीखी।
नादर ता रै कुल री टीकी की की पड़गी फीकी ॥ २४ ॥

संवत् १८५५ मे आषाढ़ का महीना था। नाथद्वारे में स्वामीजी के प्रवचनों की धूम थी और थी संघर्षों की भी। सती अजबूजी स्वामीजी के पास आईं, उनके चेहरे पर कुम्हलाहट थी, होठों पर कुछ कहने की आकुलता और हाथ में खाली झोली, स्वामीजी इनकी खिन्नता को ताड़ कर बोले— आज क्या हुआ ?

गुरुदेव ! अमुक घर में गोचरी गई। एक बहन ने मक्की की घाट लेने के लिए कहा। पात्र मे घी पहले कहीं से लिया हुआ था उसीमे वह घाट भी लेली। बहराने (देने) के पश्चात् ज्योंही

उस बहन ने हमें पहचाना तो उसकी भौंहें तन गई। तुम कौन ? भीखणजी की चेलिया! और पात्र में से घी घाट लेकर इसे रीताकर फेंक डाला। पड़ोसिन ने भी उसे बहुत कहा सुना किन्तु उसका तो जवाब था—मैं कुत्ते को डाल दूंगी पर इनके पास तो नहीं रहने दूँगी—साध्वियों ने आप बीती सुनाई।

स्वामीजी बोले—हम तो साधु है। हमारी साधना है "अला भुत्ति न सोइज्जा" अलाभ में शोक न करें। ऐसी अनेक कसौटियो पर हमें चढ़ना होगा। जहाँ इतना द्वेष हो वहाँ नहीं जाना अच्छा है। उन्होंने न तो अपने भाग्य को कोसा और न उस बहन पर शाप का जहर तो दूर, आक्रोशभरी लाल आंख भी उठाई।

सयोग ऐसा बना कि राखीपूनम के दिन उसका इकलौता पुत्र चल बसा, और कुछ ही दिनों बाद पति भी। विपत्ति अकेली तो आती नहीं है, घर बर्बाद हो गया। जब श्रावक शोभजी ने यह देखा तो बोले—

बादरसा री डीकरी की की थारो नाम।
घी सहित घाट लेयने ठाली कर दिया ठाम॥

कुछ दिनो बाद अनजाने मे साधु उसके घर गोचरी के लिए चले गए; उसका नाम पूछने पर सुबकिया भर कर रो पड़ी—मैं वही पापिनी हूँ जिसने साध्वियो से घाट छीनी थी। मैंने अपने पाप का फल यहीं देख लिया है।

[भिक्षु दृष्टान्त २६१].

: २० :

संस्मरण

होवै खुदरा संस्मरणा री सदा वात ही न्यारी।
म्हारो ईया पंथ चालसी म्हे आ कणा विचारी॥ २५॥
नर वंकै मरुधर रा धोरी कहै सहु सकट सहत्या।
लियो भार पार पहुँचावण म्हे मर पूरा देस्या॥ २६॥
महापुरुषा कै कष्टा की भी गाथा किसी चितारा।
नंनान्यू कै पल्ला की भी होती ही मनुहारा॥ २७॥

अपने संस्मरण—कडवे और मीठे सदा मधुर होते हैं। कभी-कभी स्वामीजी इन कड़वे मीठे संस्मरणों को अपने प्रिय शिष्य हेमराजजी को सुनाते जो आज भी नम्स साहित्य के रूप मे हमारे समक्ष जीवित हैं, आग वरसने वाले उन दिनों का सजीव चित्रण उन्हीं की भाषा मे यह है—

"म्हे उणानें छोडी नीसर्‌या जद पाच वर्प तो पूरो आहार न मिल्यो घी चोपर तो कठै। कपडो कदाचिन् वासती मिलती तो सवा रूपीयारी। जद स्वामीजी कहता एक चोल पट्टो थारे करो एक म्हारै करां। आहार पाणी जाच कर उजाड माये सर्व साध परा जाता। रूंखारी छाया मे आहार पाणी मेलता अने आतापना लेता। आथण रा पाछा गाव आवता इण रीते कष्ट भोगवता कर्म काटता। म्हे या न जाणता म्हारो मारग जमसी नै यूं दीक्षा हुसी। नै यू श्रावक श्राविका हुसी। म्हे तो जाण्यो आत्म रा कारज सारस्या मर पूरा देस्या"।

धर्म क्रांति की सफलता के बाद व्यक्त किए गए इन उद्गारों मे उनका जीवन-दर्शन उजागर हो रहा है। पाच-पाच वर्ष तक आधे पेट रहना, नदी कीचर में, चिलचिलाती धूप मे आतापना लेना और सवा रुपये थान की घटिया रेजी मिलने पर गुरु शिष्य मे चोल पट्टा और पछेवड़ी के लिए मनुहारें होना आदि इन अनेक सकटो का सामना कर उन्होंने अपने जीवन लक्ष्य को सफल किया।

आत्म-कल्याण के साथ पर-कल्याण का बीडा उठाकर उन्होने जो कुर्बानिया कीं वे उनके "नरवको मरु धरनो" के विरुद् को सार्थक कर रही हैं।

—[भिक्षु दृष्टात २७६]

: २१ :

नया अर्थ

हर कामा मैं वड़ा वड़ानैं आगे करकै चालै।
तेरापंथ नाम रो भिखु अद्भुत अर्थ निकालै ॥ २८ ॥

वात जोधपुर की है। श्रावक लोक दुकान में पौषध व सामा-यक किये बैठे थे। पास से ही जोधपुर के दीवान फतेहचन्दजी सींघी जब निकले तो स्थानक को छोड़ दुकान पर पौषध आदि करने पर आश्चर्य भरा प्रश्न पूछा। श्रावक गेरूलालजी व्यास ने स्वामीजी के द्वारा की गई धर्म-क्रान्ति की वात कही। दीवान साहब ने पूछा आपके साधु कितने हैं? तेरह, और देखा तो वहाँ श्रावक भी तेरह ही बैठे थे। पास खड़े एक सेवक ने इस अजब संयोग पर एक तुक्का कहा—

"आप आपरो गिलो करें आप आपरो मंत
सुणज्यो रे शहर रा लोका ए तेरापंथी तंत"

स्वामीजी ने जब नामकरण की यह कहानी सुनी तो तुरंत समर्पण की मुद्रा में प्रभु को वन्दन करते हुए बोले—हे प्रभो! यह तेरा ही पन्थ है। मैं तो उस पर चलने वाला अकिंचन बटोही हूँ। स्वामीजी की सूक्ष्म प्रज्ञा ने—श्रद्धा, विनय और समर्पण की त्रिपुटी से अर्थ-वैचित्र्य को स्पष्ट कर दिया।

—[भिक्षु यश रसायन ढाल ७]

: ७ :

प्रेरणा

"बड़ा वर्षां रे सिखा बड़ा री बात गौर कर मानै ।
ये चमत्कारी लोकानै आ तपस्या सूंपी म्हानै ॥ २९ ॥

हर एक नई संस्था और आन्दोलन चार अवस्थाओं में से गुजरता है। पहली में लोकमत उपेक्षा करता है, दूसरी में विरोध, तीसरी में प्रशंसा और चौथी में अनुगमन। तेरापन्थ तब तक पहली अवस्था में ही था। सत्य के प्रति जनता की भय-भरी उपेक्षा देखकर स्वामीजी ने अपना ही कल्याण करने का निश्चय किया। वे तपस्या करते, नदी की चिलचिलाती धूल में लेट कर आतापना लेते, और इस प्रकार वे स्वाध्याय, ध्यान के द्वारा "इमं देहं समुद्धरे" की ओर गतिमान होने लगे।

प्रभु ! आप जसे तपोधन दीर्घ प्रज्ञ मुनि संसार मे कभी-कभी आते है। आप के द्वारा अगर दुनियाँ का भला नहीं होगा तो फिर कब होगा। लगता है लोगों मे जिज्ञासा है, चेतना भी है। आप जैसा कोई मेधावी व्रती जगाने वाला चाहिए, इस तपस्या का वरदान हमे दीजिए और आप पर-कल्याण के लिए समय लगायें। मुनिश्री थिरपालजी और फतेहचन्दजी स्वामी ने स्वामीजी को बुद्ध को धर्म-चक्र की प्रेरणा करने वाले ब्रह्मदेव की नाईं धर्म-प्रचार के लिए प्रेरित किया।

स्वामीजी ने उनकी बात मानकर स्थूल से सूक्ष्म की ओर, बाह्य तप से आभ्यन्तर तप की ओर चरण बढ़ाए और लाखों के सद्भाग्य का सूर्योदय हुआ।

[भिक्षु जशरसायन ढा० १०।५।८]

: २३ :

दो चित्र

आज्ञा बिना एक क्षण भी नहीं साधु रैणो चावै।
नियम निभावण चोमासे में कोटारै पधरावै ॥१०॥
हाथो हाथ मिल्या फल वांने गया निकाल्या लारै।
"बुरां बुराई भलां भलाई" चौड़ै हेला मारै ॥११॥

कहीं भक्ति भरी मनुहारें होतीं गाव मे रहने के लिए, तो कहीं गाव और देश से निकालने की दुश्चेष्टायें भी। दोनों ही स्थितियों मे वे आत्मस्थ रहते। स्वामीजी ने नाथद्वारा मे सम्वत् १८४३ का चातुर्मास किया। कुछ सज्जनों ने गुसाईंजी को बरगलाया कि जब तक ये साधु गांव मे रहेंगे तब तक बरसात नहीं होगी। राजा या बड़े आदमी कानों के कच्चे होते ही हैं—आदेश निकाल दिया कि पट्टीवाले साधुओं को गाव से निकाल दो।

भिक्षा लेकर साधु आए ही थे कि जमादार (हरकारा) ने आकर सूचना दी। स्वामीजी तत्क्षण साधुओं को साथ ले कन्धों पर बोझ भार उठाकर चल पड़े। बीच ही में उन हितैषी सन्तों का स्थानक आ गया। स्वामीजी सद्भावपूर्वक "खमत खामणा" किए और आगे चलकर दो कोस पर कोठ्यारा गाँव में एक स्थानकवासी बन्धु के मकान में ठहर गए।

जमादार ने जब इन पट्टीबंध साधुओं को देखा तो लगा कहने—मुनिजी आप भी निकलिए! नही, नहीं! हमे नहीं इन्हें ही निकालने का आदेश है—सकेतपूर्वक गर्व स्फीत नेत्रों से झाक कर वे बोले पर जमादार ने एक न सुनी, पट्टीबंध साधुओं को निकालने का आदेश जो था। आगे-आगे स्वामीजी पीछे-पीछे वे और उनके पीछे जमादार कोठ्यारा पहुँचे तो जो एक जगह थी सो रुक गई, अब कहाँ ठहरे? यह भी एक समस्या थी। स्वामीजी की प्रामाणिकता व उनकी "भले भलाई बुरे बुराई" भी स्पष्ट हो गई।

शास्त्रार्थ की फलश्रुति

आछी भूंडी नही विचारै मानव जश को भूखो।
सन्नी असन्नी न्याय कह्यां मार्‌यो छाती मैं मुक्को ॥ ३२ ॥

उदयपुर में एक मुनि आए और बोले भीखणजी! सुना है बड़े चर्चावादी हो! मुझ से भी कुछ पूछो न ?

प्रश्न करने की मुझे तो कोई उत्कण्ठा नहीं है।

अति आग्रह करने पर एक सीधा-सा प्रश्न स्वामीजी ने पूछा—बताओ सन्नी हो या असन्नी ?

सन्नी हूँ! कैसे? नहीं, नहीं असन्नी! कैसे? ओह भूल गया सन्नी असन्नी दोनों ही नहीं·· यह भी तो कैसे? स्वामीजी ने प्रश्न पर प्रश्न उठाया ।

मुनिजी झल्ला उठे, आखिर कैसे का भी कोई उत्तर होता है और स्वामीजी के वक्षस्थल पर कसकर एक मुक्का जमाकर चलते बने।

स्वामीजी की शात मुद्रा जैसे पूछती ही रही—एक ही में बस ॥

[भिक्षु दृष्टान्त ४७]

: २५ :

वे तो सहयोगी हैं

गुण ग्राही नर हर वस्तु स्यू गुण लेता ही रहवै।
की मैं काढूँ की वै काढै भिक्ष हंस कर कहवै ॥ ३३ ॥

भिक्षु स्वामी और अन्य सम्प्रदायवालों में परस्पर भिड़ंत कराके स्वयं यह मजा देखने का मनसूबा लेकर एक नारदीय वृत्तिवाला व्यक्ति आया और बोला—वे तो आपमें अनेक दोष निकाल रहे हैं और आप यों चुप बैठे हैं ?

स्वामीजी ने गम्भीर होकर कहा—निकाल ही रहे हैं डालते तो नहीं ? बहुत अच्छा है यह तो ''

है ! क्या कह रहे हैं आप ?

यही तो कि—यह मेरे लिए बहुत अच्छा है, अपने दोष निकालने का काम मैं अकेला ही कर रहा था अब वे भी मुझे सहयोग देते हैं। मुझे तो निर्दोष होना ही है। कुछ मैं निकालूँगा, कुछ वे, और मेरा काम हो जाएगा।

[भिक्षु दृष्टान्त १३]

: २६ :

आत्म-दर्पण

अवगुण सुणणै की भी ताकत होवै मरदानै मै ।
दोष एक सो सत्तावन भट लिख्या आप पानै मै ॥ ३४ ॥

अपनी बडी-बडी प्रशस्तिया और लम्वे-चौड़ प्रमाणपत्र कन्धों पर उठाए फिरने वाले "बडे आदमी छाप" नेताओं की आज क्या कमी है, पर वह भी एक पुरुष था जिसने गुणों की नहीं अपने में वताए जानेवाले दोषो की गणना की, उन्हें अपने हाथ से लिखकर आत्म-दर्पण रूप में रखा ।

दो साधु उनके संघ से चले गए। उन्होंने ईर्ष्या का जहर उगलते हुए भिक्षु स्वामी पर आरोप लगाने शुरू किए। आत्म-द्रष्टा स्वामीजी ने ज्यों-ज्यों सुने त्यों-त्यों लिख डाले, कुल १५७ दोष लिखे गए। भिक्षु स्वामी के हाथ का वह आत्म-दर्पण आज भी सुरक्षित है ।

: २७ :

अमृत योगी संत

ऊधी नै सूंधी भी लेया कहणै वालो हारै।
म्हानै स्वर्ग-नरक ही थानै मिलसी लेखै थारै॥ ३५॥

एक वार देसूरी (मेवाड) जाते समय मार्ग में घाणेराव के कुछ व्यक्ति स्वामीजी को मिल गए और परिचय पूछ बैठे—आप कौन है ?

मुझे भीखण कहते है।

है! वहुत वुरा हुआ! सुवह-सुवह तुम्हारा मुह कहाँ से दीख पड़ा।

क्यों ऐसी क्या वात है ?

क्या-क्या, अव तो नरक मे जाना ही पड़ेगा—उनके शब्दो और चेहरे पर ऐसा जहर था कि एक वार तो मुर्दा भी तिलमिला उठे।

स्वामीजी ने स्मित भाव से पूछा—और तुम्हारा मुंह देखे ?

मेरा मुंह देखनेवाला स्वर्ग जाता है।

तब तो ठीक ही हुआ, तुम्हारा मुंह मैंने देखा, इसलिए स्वर्ग का अधिकार तो मुझे ही मिला न ? स्वामीजी का हास्य और स्पष्ट हुआ।

चुप-चुप उनके पाव खिसकने लगे।

घोर हलाहल की चुटकी में अमृत बनाने की यह दैवी—प्रक्रिया उस अमृत योगी संत ने हमें सिखलाई थी।

कविता कैसे करते हैं ?

कवि कविता स्यूँ दै शिक्षा केवल मन नहीं बहलावै ।
एक टोपसी नान्ही सी कह सता नै चेतावै ॥ २६ ॥

राष्ट्रकवि ने एक जगह लिखा है—

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए ।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए ॥

स्वामीजी के कवि-कर्म का मूल मंत्र—उपदेश और शिक्षा था। जीवन में कुल ३८ हजार पद्य लिखे पर उनकी कविता की प्रत्येक पंक्ति अपने आप में एक घटना व शिक्षा लिए हुए है।

आगरिया गांव के प्रतापजी नामक व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा—आप कविता कैसे करते हैं ?

स्वामीजी ने देखा कि पास ही में एक अलमस्त मुनि लेखन-कार्य कर रहे हैं ओर सफेदे की एक छोटी-सी टोपसी (दवात) खुली पड़ी है, बोले—

"न्हानींसी एक टोपसी मांहै घाल्यो सपेतो ।
जल घणाकर राखजो नहीं तो पड़ैला रेतो ॥

मैं कविता ऐसे करता हूँ।

—[भिक्षु दृष्टान्त २४४]

: २६ :

सांच को आंच नहीं

खुद को घर साचो होवै तो तनिक न संशय आवै।
हेम मुनी की भर बाजारा चादर नाप दिखावै॥ ३७॥

'पादु में भिक्षु स्वामी के पीछे-पीछे उनके प्रतिभा सम्पन्न शिष्य मुनि श्री हेमराजजी चले आ रहे थे, पीछे से किसी ने आवाज कसी-छोटे मुनि की चद्दर (पछेवड़ी) बड़ी है।

स्वामीजी के गतिमान चरण रुक गए पीछे मुड़े और पूछा-क्या बात है ?

आपके शिष्य की पछेवडी कल्प-मर्यादा से कुछ बडी है।

शायद नहीं है—स्वामीजी ने दृढ़ता के स्वर में कहा।

है—उसने और अधिक आग्रह किया।

इस रस्सा-कसी में बाजार के चौराहो पर घूमनेवाले तमाशबीन घेरा डाल के खड़े हो गए। स्वामीजी ने शिष्य की चद्दर उतारी, नापना शुरू किया तो कल्प के अनुसार कुछ छोटी ही निकली · ·।

स्वामीजी को तो अब बोलने की आवश्यकता जैसी कुछ चीज ही नहीं रही थी। उनकी सचाई अपने आप बोल रही थी।

[भिक्षु दृष्टान्त ७७]

गुरु की परीक्षा

ठोलो मारया भिक्षु कहै भाई! क्यू गुस्सै में आवो।
(थे) विना वजाया एक टके की हाडी भी कद ल्यावो ॥२८॥

अज्ञान पराजित होने पर आवेश का चोगा पहन कर निकलता है। जब उस व्यक्ति को प्रश्न का उत्तर नहीं आया तो झुंझला कर भिक्षु स्वामी के शिर पर ठोला लगाकर चलता बना। देखनेवालों के दिल मे यह बात काटे की तरह चुभ गई और बिच्छू के डंक की तरह असह्य हो गई।

अभी उसका बदला लेंगे—श्रावकों के चेहरे तमतमा उठे, खून खौलने लगा।

ठोला तो मेरे शिर पर लगा था जब मुझे क्रोध नहीं आया तो तुम्हे क्यों आया ? स्वामीजी ने श्रावकों से प्रश्न किया। श्रावक लोग चुपचाप सुन रहे थे।

जानते हो जब बाजार में टके की हंडिया लेने जाते हो तो टकोरा लगाकर क्या देखना चाहते हो ?

उसकी परीक्षा करते हैं गुरुवर !

तो क्या पता उसने भी गुरु बनाने के लिये मेरी परीक्षा की हो।

श्रावकों का क्रोध हास्य मे परिणत हो गया।

: ३१ :

पढे हैं पर कढे नहीं

ओछी पोटी वालां में होवै अभियान सवायो।
कैर मूंग आखा नहीं खाणा पंडित अर्थ बतायो ॥३९॥

क्या आपने संस्कृत पढ़ी है? संस्कृत के एक पुस्तकीय विद्वान् ने स्वामीजी से पूछा। प्रश्न में अहं की दुरभिगंध बोल रही थी।

नहीं—भिक्षु स्वामी ने सहज भाव से कहा।

तो फिर आप जैन शास्त्रों का सही अर्थ समझ ही नहीं सकते।

तो आपने संस्कृत पढी है? शास्त्रो का अर्थ कर लेते है?' स्वामीजी ने पूछा।

हा, अच्छी तरह से!

पूछिये कुछ?—उसने शेखी बघारी।

"कयरे मग्गे अक्खाया"—इसका क्या अर्थ है?

सीधा सा अर्थ है इसका तो—कैर और मूग आखे (बिना दो दाल किए) नहीं खाने चाहिए—पंडित ने कहा।

एक मन्द मुस्कान स्वामीजी की आखों और होठों पर छा गई—पंडितजी पढ़े हैं, अभी कढ़े नहीं, विद्या पाई है, अनुभव नहीं। भगवान् ने कितने मार्ग वताए हैं—इसका अर्थ तो यह है।

पंडितजी का अभिमान (अज्ञान) वाढ़ के पानी की तरह उतरने पर था।

[भिक्षु दृष्टान्त २१८]

: ३२ :

घास के बदले दूध

दुकानदार ग्राहक सारू ही ल्याकर माल दिखावै।
गाय घास खाकर पय देवै बुढ़िया नै समझावै ॥४०॥

ग्रीष्मकाल की भयंकर गर्मी में विहार करते हुए स्वामीजी किसी गाव में पहुचे। साधुओं को प्राशुक पानी नहीं मिला। एक किसान के घर पर प्राशुक (निर्दोष अचित) पानी तो था पर बुढिया देना नहीं चाहती थी, वह कहती थी—यह कुंए का साफ पानी पड़ा है चाहे जितना ले जाओ गंदला पानी नहीं दूंगी।

प्यास से व्याकुल बने मुनि भिक्षु स्वामी के पास आए और बुढ़िया की बात कह सुनाई। स्वामीजी स्वयं साधु को साथ ले उसके घर पहुँचे और बुढ़िया से नहीं देने का कारण पूछा।

बुढ़िया बोली—बाबा! जो जिसको देता है उसे अगले जन्म में वैसा ही मिलता है, ऐसा गंदला पानी मेरे से तो नहीं पिया जा सकता बाप रे बाप!!

स्वामीजी को बुढ़िया की ऋजु-जड़ता पर तरस आई बोले-गाय को क्या खिलाती हो?

बुढ़िया—घास चारा।

स्वामीजी—वह तुम्हें क्या देती है?

दूध।

भोली बुढ़िया! साधु तो गाय के समान है, उन्हें यह पानी देने के बदले में ऐसा ही गंदला पानी नहीं पीना पड़ेगा।

बात बुढ़िया की समझ मे आ गई और बोली तब तो ले जाओ।

स्वामीजी की कुशल प्रज्ञा मे व्यावहारिकता एवं सैद्धान्तिकता का समन्वित चमत्कार था जो प्रतिकूलताओं को भी अनुकूल बना लेता।

[भिक्षु दृष्टान्त ३४]

उत्तर देने की कला

समझदार नर सोच समझ कर निज जबान नै खोलै।
कान खजूरे कै पग पूछ्यां जल्द बाज के बोलै ॥४१॥

क्यों भीखणजी! घोड़े के कितने पैर होते है? एक परिचित व्यक्ति ने पूछा।

कुछ क्षण मौन रह कर स्वामीजी चिन्तन की मुद्रा मे बोले—दो आगे के दो पीछे के कुल चार पैर हुए।

बस! प्रत्युत्पन्न मति और विलक्षण प्रतिभा का यही नमूना है क्या?

इस सीधी सी बात के लिए इतना सोच विचार!!

स्वामीजी और भी गंभीर हो गए—जानने भर को तो सभी जानते है, घोड़े के चार पैर होते है। पर तपाक् से उत्तर देते ही यदि तुम अगला प्रश्न कर बैठते कि कनखजूरे के कितने पैर होते है तो?

उसके कान खुश कर हाथ मे आ गए—आपने कैसे जान लिया मैं तो यही पूछने जा रहा था।

मैं मानता हूँ कि प्रश्न छोटा हो या बड़ा, बात सीधी हो या टेढ़ी मेढी, पर उसका उत्तर, समाधान, बुद्धि की टकसाल में से निकल कर ही आना चाहिए। नहीं तो बुद्धि का अभिमान कभी-कभी मजाक बन जाता है।

: ३४ :

भिक्षु की ईक्षु वृत्ति

महापुरुष अपकारी नैं भी उपकारी कर मानै।
म्हा स्यू तो उपकार कर्‌यो यूँ कहे भिक्षु लोकानै ॥ ४२ ॥

पाली उस युग का आधुनिक शहर था। भिक्षु स्वामी बाजार की किसी हाट मे ठहरे थे। मालकिन ने हाट खाली कर देने को कहा।

स्वामीजी ने कहा तुम्हें जब भी आवश्यकता हो हम खाली कर सकते है।

मालकिन—जरूरत तो कोई खास नहीं है। पर तुम्हारे जैसे ही साधु मुझे कह गए है, ये फिर काती पूनम तक यहाँ से नहीं निकलेंगे। इसलिए अभी आप चले जाइए।

स्वामीजी अक्षुब्ध और अक्रुद्ध भाव से अपना सामान कंधों पर लिए साधुओं के साथ किसी दूसरे स्थान पर जा ठहरे।

चतुर्मास में वर्षा अधिक हुई वह जीर्ण-शीर्ण हाट भूमिसात् हो गई। इस पर भी उन्होंने न बताशे बांटे न अपने भाग्य पर इतराने जैसा ही अभिनय किया, हां ईख की तरह कड़वी खाद से माधुर्य खींचते हुए बोले—जरूर! "उन्होंने आखिर तो हमारा उपकार ही किया।"

[भिक्षु दृष्टान्त ३]

: ३५ :

पोता चेला नहीं चाहिए

पूत सपूतां सू ही सचमुच जग में नाम हुवैला।
भिक्षु कहे नहीं चावे म्हारै इसड़ा पोता चेला ॥४३॥

सिरियारी में कचरोजी नामक कोई मुनि स्वामीजी के पास आए और उन्हींसे पूछने लगे—भीखणजी कहाँ हैं ?

स्वामीजी उनके उतावलेपन का रहस्य ताड़ गए, बोले—मेरा ही नाम भीखण है।

ओह ! मैं तो आपको देखने के लिए आया हूँ।

मैं बैठा हूँ देख लो !

मुझसे कुछ प्रश्न पूछिए न—कचरोजी ने आग्रह किया।

स्वामीजी ने सहज रूप में पूछा—अपने तीसरे व्रत के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण बतलाओ !

कचरोजी बगलें झाकते हुए बोले—यह सब तो मेरे पन्नों मे लिखा हुआ है।

अगर पन्ने फट गए तो—स्वामीजी ने एक फब्ती कसदी।

बात को टालते हुए कचरोजी बोले—मेरे गुरु के साथ आपकी जो चर्चा हुई थी उसमे आपने उनके प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया।

स्वामीजी ने कहा—गुरु नहीं तो चेला ही वह बात फिर पूछ सकता है।

वाह! आपसे मैं क्या पूछूं जी! एक रिश्ते से तो आप मेरे दादा गुरु लगते है। स्वामीजी हँस पड़े—तेरे जैसा ज्ञानवान् पोता चेला मुझे नहीं चाहिए।

[भिक्षु दृष्टान्त ४६]

: ३६ :

कड़ा प्रतिकार

महापुरुष नहीं करै उपेक्षा हो चाहै गल्ती थोड़ी।
झटपट पट हित एकै सागै पांच सत्या नै छोडी॥ ४४॥

व्रत-निष्ठा के दर्पण में प्रवृत्ति की अपेक्षा भावना की तेजस्विता का प्रतिबिम्ब देखना स्वामीजी का सहज स्वभाव था। दुर्बल व्रत-निष्ठा भविष्य में अनेक मायाचारो को न्यौता देती है, यह उनका अनुभव था।

सवत् १८३७ की बात है चंडावल (मारवाड) में स्वामीजी फत्तुजी आदि साध्वियों को उनकी आवश्यकतानुसार वस्त्र दे रहे थे। स्वामीजी को सन्देह हुआ कि कहीं इनके पास मर्यादा से अधिक वस्त्र तो नहीं हुआ है। मुनि अखेरामजी को भेज कर वस्त्र का नाप (प्रमाण) लिया गया तो सन्देह सच निकला, तत्काल इस घटना से सम्बन्धित पाँच साध्वियो को बुलाकर स्वामीजी ने आडे हाथों लिया—तुमने जो कल्प से अधिक वस्त्र रखा है भले ही यह छोटी-सी बात हो पर मुझे इसमें बहुत बड़ा अनर्थ दीखता है। तुम्हारी निष्ठा पर मुझे भरोसा नहीं है कहकर उन पाचों साध्वियों को सघ से अलग करके स्वामीजी ने संख्या को नहीं किन्तु शुद्धि को महत्त्व दिया। यह उन दिनों की बात है जब साध्वियों की संख्या अत्यल्प थी।

[भिक्षु दृष्टान्त १५४]

: ३७ :

धर्म एव हतो हन्ति

हाथो हाथ मिल्या फल आज्ञा विना कर्यां चोमासो।
आज्ञा की अवहेला करणी नहीं कोई खेलतमासो ॥४५॥

कहा जाता है—"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः" धर्म की जो रक्षा करता है, वह स्वयं सुरक्षित रहता है और धर्म का नाश करने वाला खुद भी नष्ट हो जाता है। जब व्यक्ति अपने कर्त्तव्य से चूक जाता है तो उसका दण्ड भी अपने आप पा लेता है। भिक्षु स्वामी की अनुमति के बिना ही साध्वियों ने धामली नाम के गाँव मे चातुर्मास कर दिया। सयोग ऐसा बना कि साध्वियों को वहाँ हर प्रकार के कष्ट का सामना करना पडा।

जब स्वामीजी से पूछा गया कि उन्हे अनुशासन की अवज्ञा के अपराध मे क्या कुछ प्रायश्चित्त देंगे ? तो स्वामीजी ने कहा—यों तो उन्हें बहुत-सा दण्ड उस गाँव ने ही दे दिया है फिर भी कुछ मुझे भी देना होगा।

—भिक्षु दृष्टान्त १७६

: ३८ :

गाडी और गधा

दुराग्रही नर सोरै सांसा कद समझै समझाया।
धर्म हुवै या पाप हुवै मुनि नैं गधै बैठाया ॥४६॥

वीरान जंगल में मार्ग चलते-चलते साधु अगर थक गए हों, और सहज ही कोई गाडी उधर से निकलती हो तो उस पर बिठलाकर रास्ता पार करवा दें तो इसमे क्या होगा? एक व्यक्ति ने स्वामीजी से पूछा।

स्वामीजी ने कहा—मान लो कोई गाडी नहीं पर गधा उधर से आ निकला अब उस गधे पर बिठाकर ले आए तो?

ना ना! गधे की बात क्यों करते हो गाडी पर बिठाने की बात है—उसने झल्लाकर कहा।

साधु के लिए तो दोनो ही समान है। अहिंसा की दृष्टि से गाडी और गधे में क्या अन्तर है? स्वामीजी ने कहा।

उसका आग्रह मौन हो गया, तर्क ने चिन्तन का अछूता उन्मेष जगा दिया।

—भिक्षु दृष्टान्त १५३

: ३६ :

वह विधवा हो गई

ज्यूं-त्यूं करणी निन्दा काढ्यो निन्दक सार इतोहीं।
धीरै सी पूछे भिक्षु बाई तू क्यूं विधवा होई।।४७।।

स्वामीजी पींपाड़ में गोचरी जा रहे थे। मार्ग में एक बाल विधवा बहन मिल गई। अनजाने ही उसने भिक्षु स्वामी को वन्दना की और अपनी धार्मिक दृढ़ता का थोथा विज्ञापन करने की नियत से बोली—गुरु महाराज! भीखणजी की श्रद्धा लेनेवाला अन्त दुखी होता है। अभी-अभी अमुक बाई ने उनको गुरु बनाया था सो बेचारी विधवा हो गई।

स्वामीजी ने उसी सौम्यता से पूछा—बाई! उसने तो भीखणजी को गुरु माना, इसलिए विधवा हो गई खैर.. पर तूं तो भीखणजी की निंदा करती है तू विधवा क्यों हो गई?

उसका चेहरा फीका पड़ गया और सहम कर घर में जा छुपी।

—भिक्षु दृष्टान्त

जीते हो ··?

"निद्रालु नै साच बोलतो बोलो कवण निहार्‌यो।"
जीवो हो या मरग्या कहकर ठागो तुरत उघाड्यो ॥४८॥

ठंडी-ठंडी रात मे स्वामीजी का प्रवचन चल रहा था मांढ़ा गाँव में, सामने बैठे 'आसोजी' नामक व्यक्ति मीठी-मीठी नींद की झपकियाँ ले रहे थे।

सभा में सबसे आगे आकर बैठे और नींद की झपकियाँ ले—स्वामीजी को यह अखरा—आसोजी ! नींद लेते हो? उन्हें चेताया।

नहीं स्वामीजी—आसोजी गलती पर पर्दा डालते हुए बोले। फिर भी नींद उडी नहीं, स्वामीजी ने दुबारा चेताया—आसोजी नींद लेते हो?

ऑख खुलते ही टके सा उत्तर आया—नहीं स्वामीजी!

स्वामीजी ने इस बार झूठ की कलई खोलते हुए चुटकी ली—आसोजी! जीते हो?

आसोजी तपाक् से बोल पड़े—नहीं स्वामीजी!

सुननेवाले खिलखिला कर हँस पड़े और यह जान गए कि निद्रालु किस प्रकार झुठलाया जा सकता है।

—भिक्षु दृष्टान्त ५८

: ४१ :

आहार और वस्त्र

झूठै झगड़ै नै भी समझू मिन्टा में निण्टावै।
आहार करै ज्यूं वस्त्र धरै मुनि सरिखो न्याय बतावै ॥४१॥

विहार करते-करते स्वामीजी ढुंढाड़ पधारे। कुछ दिगम्बर श्रावक उनके निकट आए और बोले—आप लोग वस्त्र रखते हैं अतः परीषह सहने मे कमजोर हैं। आपकी साधुचर्या पूर्ण नहीं है।

परीषह कितने है ? स्वामीजी ने पूछा।

वाईस।

पहला परीषह कौन सा है ?

क्षुधा।

तुम्हारे साधु आहार करते हैं या नहीं—स्वामीजी ने बात की गांठ खोलते हुए कहा।

एक वक्त करते है।

क्यो ?

भूख मिटाने के लिए।

तो हम सर्दी मिटाने के लिए वस्त्र रखते है।

वे पानी भी पीते है।

क्यों ?

प्यास मिटाने के लिए।

वैसे हम सर्दी गर्मी से बचाव करने के लिए वस्त्र रखते है। अगर आहार-पानी के उपयोग में साधुचर्या में दोष नहीं आता तो वस्त्र में ही फिर दोष क्यों ?

श्रावक लोग समाधान की सास लेकर प्रसन्न हो उठे।

[भिक्षु दृष्टान्त ३०]

: ४८ :

यत् सत्यं तन्मम

साचो पक्ष साचरी राखै झूठो हठ नहीं धारै।
श्रद्धा जच्या दिगम्बर बणता के अटकै है म्हारै ॥ ५० ॥

एक दिन कुछ दिगम्बरी श्रावक आए, स्वामीजी के वैराग्य और प्रतिभा से प्रभावित हो बोले—महाराज! आप में त्याग की ऊंचाई भी है, पांडित्य की गहराई भी है किन्तु यदि आप दिगम्बर मुनि बन जाते तो सागर और सुमेरु एक जगह मिल जाते।

स्वामीजी तो सत्य के जिज्ञासु थे, सत्य के ही साधक थे। साधना की भाषा में बोले—मैंने श्वेताम्बर शास्त्रों के विश्वास पर घरबार का त्याग करके अणगारत्व स्वीकार किया है। जिस दिन दिगम्बर शास्त्रों पर श्रद्धा होगी तो उन्हें स्वीकार करते भी मुझे कोई रोकने वाला नहीं है।

उनके चिंतन की स्पष्टता और सहज भावना के सामने श्रावकजनों का मस्तक झुके बिना नहीं रह सका। उनकी साधना का मूल मंत्र ही था "यत् सत्यं तन्मम" सत्य सो मेरा।

[भि॰ दृष्टान्त ११]

: ४३ :

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी

खुद की सुख सुविधा नै देख्या नहीं काम बण पावै।
कणा विराज्या ? सूत्या ही कद श्री भिक्षु फरमावै ॥ ५१ ॥

"तिन्नाणं तारियाण" यह स्वामीजी का विरुद था। जिस अमृत की खेती उन्होंने की उसके अमर फल जन-जन में बाटने को वे दिन और रात एक कर देते।

जिन रात्रियो को साधारण जन सोकर गंवा देते है, उन्हीं रात्रियो में वे जग कर दुनिया को प्रतिबोध देते।

पाली में रात्रि का प्रवचन होने के बाद दो भाई चर्चा करते-करते ऐसे जमे कि पौ फटने को हो गई, दोनो शंका का विप लेकर आये थे पर सत् श्रद्धा का अमृत लेकर ही गए।

स्वामीजी ने साधुओ को जगाया—प्रतिक्रमण का समय हो चुका है उठो सन्तो!

शिष्यजन उठ कर वन्दना करने आए—भगवन्! आपको जगे कितनी देर हो गई ?

कोई सोया भी था—स्वामीजी ने कहा।

जन-जागरण के लिए स्वयं जागरण करने वाले इस परम कारुणिक प्रभु के समक्ष सभी नतशीप थे।

[भिक्षु दृष्टान्त ५३

अकब्बरी मोहर या ठीकरी

पड्या स्वार्थ में फर्क स्वारथी रै मन ईर्ष्या जागे।
कह अकबरी मोहर, ठीकर्‌यां, कहता देर न लागे॥ ५२॥

गुलाव ऋषि नाम के एक मुनि ३२ सूत्र कंधों पर लिए घूमते थे। एक बार स्वामीजी से चर्चा करने आए किन्तु दाल गली नहीं तो बोले—मेरे से तो क्या गोगुंदा के श्रावकों से चर्चा करो तब जानू! वे तुंगिया नगरी के श्रावक हैं अकबरी मोहरे हैं।

घूमते-घामते स्वामीजी भी गोगुंदा आ पहुँचे। श्रावकों को तत्त्व समझाया, कुछ तो बड़े ही पक्के श्रद्धालु बन गए। गुलाव ऋषि को खबर लगते ही तो आए गोगुदा। किन्तु श्रावको का रंग पलटा हुआ देख वे तो भौंचक्के रह गए। श्रावक जन उल्टे उन्हीं से चर्चा करने लगे। श्रावकों के तर्क-वितर्क से तग आकर गुलाव ऋषि झल्ला उठे—गोगुंदा अब अकब्बरी मोहर नहीं ठीकरी हो गया है।

वहाँ के ही श्रावकों ने स्वामीजी को १८२२ पन्नों मे लिखी भगवती सूत्र की एक प्रति और पन्नवणा सूत्र की प्रति भी वहराई जो आज भी आगम-प्राप्ति की दुर्लभता का इतिहास सुना रही है।

[भिक्षु दृष्टान्त ६०]

: ४५ :

दीक्षा का डर

है संयम पथ सूरा को कायर की पड़ै न पेशी।
धसकै सूं ही ताव चढ़ै तो वो के संयम लेसी॥ ५२॥

केलवा की एक बहन अपना बड़प्पन जमाने के लिए शेखी बघारा करती थी कि स्वामीजी का यहाँ आना हो जाए तो मैं दीक्षा ले लूं।

संयोग ऐसा हुआ कि कुछ दिनों बाद विहार करते-करते स्वामीजी केलवा आगए और लोगों के मुंह से उस बहन की बात सुनी।

शाम को वह बाई दर्शन करने आई तो सुबह नहीं आने का कारण पूछा—महाराज! मुझे तो बहुत जोर की बुखार चढ़ आई। वह रोनी-सी सूरत बनाकर घिघियाने लगी।

कब से ?

आज ही।

कहीं हमारे आने पर दीक्षा लेने के डर से ही तो तुझे बुखार नहीं आई है—स्वामीजी ने उसके मन को पढ़ते हुए कहा।

महाराज! बात तो ऐसी ही है आपने कैसे जाना?

स्वामीजी मुस्कराए—दीक्षा लेने के डर से बुखार चढ़ाने वाले दीक्षा लेकर ही क्या निहाल करेंगे, यह तो सिर देने वाले वीरों का मार्ग है।

[भिक्षु दृष्टान्त ३८]

: ४६ :

कच्चा हृदय

सयम पथ पर वै के चढसी जो न मोह छिटकावै।
रोती वेटी साथ जंवाई तो कद कंठ मिलावै॥ ५४॥

खेरवा (मारवाड़) के एक चतरोजी नामक व्यक्ति ने स्वामीजी से निवेदन किया—गुरुदेव! मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।

तुम्हारा हृदय कच्चा है, परिवार के मोह में बन्धे हो, जब तक यह नहीं छूटे तब तक दीक्षा कैसे आए ?

हाँ प्रभु! बात तो यही है। परिवारवालो से जब विछुडता हूँ तब आखें तो भर ही जाती है।

स्वामीजी ने उदाहरण दिया—जंवाई जब पत्नी को लाने ससुराल जाता है तब उसकी पत्नी तो अपने मा-बाप, भाई-बहन से विछुडने पर आँसू बहाती है, रोती भी है, पर उसे देखकर जंवाई भी आसू बहाने लग जाए तो कैसी बने ?

संसारवाले अपना स्वार्थ छूटने पर दुःखी होते है, परन्तु परमार्थ की ओर चलने वाला तो उनसे विरक्त होता है। वह क्यों रोए ? कच्चे हृदयवाले घट मे साधना का अमृत टिक नहीं सकता।

[भिक्षु दृष्टान्त ३७]

: ४७ :

वैराग्य का ढोंग

मा मरगी पण मेर मेरप्या को सम्बन्ध पुराणो।
थारै सरिसै कायर नै है मुश्किल सयम आणो ॥५५॥

विरक्ति की वात वनाने वाले वहुत होते हैं। हृदय मे जव तक विरक्ति न आए तव तक मोह की परम्परा टूटती नहीं है।

एक वार स्वामीजी से किसी ने कहा—आपके चरणो में दीक्षा लेने की इच्छा है, पर मेरी वूढी मा अभी तक जीवित है उससे मेरा मोह वहुत है।

उसकी माँ के गुजरने के कुछ दिनों वाद स्वामीजी उस गाँव में गए तो वह व्यक्ति दर्शन करने आया। स्वामीजी ने कहा—अव तो तेरी माँ चल वसी है ?

हाँ महाराज! माँ तो चल वसी किन्तु अव तो माल वेचने के लिए आप-पास के गाँवों मे जाता हूँ सो वहाँ के वहुत से स्त्री-पुरुषों से मोह लग गया है उनका मोह नहीं छूटता।

स्वामीजी उसके ढोंग पर व्यंग कसते हुए वोले—"न तो नौ मन तेल हो और न राधा नाच दिखाये"; न तो उनका अन्त आएगा और तुम्हारी दीक्षा होगी।

[भिक्षु दृष्टान्त ४३]

: ४८ :

सच्चाई का जादू

वार्‌यो नहि मानणियो जग में मानै आखिर हार्‌यो।
होगी चोली वन्द पातरो भीखण जणा उघाड्यो ॥५६॥

वात किसनगढ़ की है। स्वामीजी पाडियों के मुहल्ले मे गोचरी जाकर वापिस लौट रहे थे। किसी एक सम्प्रदाय के मुनि चर्चा करने आए और दर्प भरे स्वर मे वोले—भीखणजी! मोसरवाले घर मे से मिठाई लाए हो?

स्वामीजी—इसमे क्या दोप है? मोसर तो हो चुका।

तुम तो वैरागी कहलाते हो, सो नहीं लानी चाहिए।

मैं तो नहीं लाया—स्वामीजी ने कहा।

तो तुम्हारी झोली खोल कर दिखलाओ।

स्वामीजी ने झोली को जरा और गहरी पकड़ ली। उनकी आतुरता वढ़ती गई और वोले तुम अवश्य मिठाई लाए हो, इस लिए झोली खोलकर दिखलाने से कतराते हो। स्वामीजी के स्पष्ट उत्तर से भी उनका वहमी और कदाग्रही मन शान्त नहीं हुआ।

फिर वे झोली दिखाने का आग्रह करने लगे। इस रस्सा-कस्सी में काफी लोग जमा हो गए।

स्वामीजी अब तक दृढ़ थे और इनकी दृढ़ता ने लोगों के जोश को उभार दिया। स्वामीजी ने झोली खोल कर पात्र निकाला और बिल्कुल औंधा कर दिया, कहिए कहाँ है मिठाई ?

स्वामीजी के सचाई के जादू के सामने मुनिजी की सिटी-पिटी गुम हो गई और अपने अविवेकपूर्ण हठ पर पछताने लगे।

[भिक्षु दृष्टान्त २८]

: ४६ :

साले का शिर उड़ा दो

गरम लोह का टुकड़ा करदै ठंडे लोहै वालो।
त्यो 'मिच्छामि दुक्कडं' क्यू को बिना लुगाई सालो ॥५७॥

मुनि क्षान्ति विजय उनका नाम था। किन्तु "दुर्वासा" के रूप मे उनकी प्रसिद्धि कम नहीं थी। कहते थे कि सब के मुँह में अँगुली डाल कर देख आया हूँ कहीं दाँत नहीं है, एक कालिये भीखण से अभी तक नहीं भिडा हूँ।

काफरला (मारवाड) मे जंगल जाते हुए मार्ग में ही स्वामीजी से भेंट हो गई। बोले—चर्चा करो। पहले दिन वहीं पर कुम्हारों के मोहल्ले के बीच जम कर चर्चा हुई।

दूसरे दिन दर्शकों की भीड के बीच चर्चा शुरू हुई। स्वामीजी ने कहा—"धर्म के लिए हिंसा करने में दोष नहीं है, यह अनार्य वचन है"। ऐसा भगवान् महावीर ने कहा है।

मुनिजी ने कहा—यह पाठ शुद्ध नहीं है, मै अपनी प्रति मे देखूँगा।

अपनी प्रति मंगवा कर देखा तो भी वही पाठ मिला। बात हाथ से छूटती देख कर मुनिजी के हाथ काँप उठे।

स्वामीजी ने कहा—मुनिजी! हाथ क्यों काँप रहे हैं? जनता को पाठ सुनने की उत्सुकता है, आप पाठ सुनाइए। किन्तु उन्होंने नहीं सुनाया, तब आचार्य भिक्षु बोले—धूजते क्यों हो? शरीर धूजने के चार कारण माने गए हैं— कपन वायु, क्रोध, चर्चा मे पराजय और काम-पिपासा। आप कौन-से कारण से धूज रहे हैं।

मुनिजी का क्रोध और ज्यादा भड़क उठा, बोले—साले का शिर उड़ा दूं. स्वामीजी ने गम्भीर होकर कहा—मैं तो मुनि हूँ, जगत् की सभी स्त्रियाँ मेरी माँ-बहन है तो क्या कोई मेरी बहन आपके नहीं तो मैं साला कैसे हुआ? और फिर मुझे पंचेन्द्रिय जीव तो मानते हो। आप मुनि जो कहलाते हैं क्या मुझे मारने की कोई छूट रखी है। मुनिजी चुप हो गए। विरोध विनोद के रूप मे उभर उठा …।

बड़ी-से-बडी और कड़ी-से-कड़ी चर्चावार्ता से भी स्वामीजी की प्रज्ञा स्थिर रहती, हृदय शान्त और वचन संयत रहता। यही उनकी पहली विजय होती।

[भिक्षु दृष्टान्त ६१]

बुद्धि का उपयोग

अकलदार नर सदा अकल रो सदुपयोग ही चावै।
वा बुद्धी भी कांई काम की (जो) पड़ी पाप बंधावै॥ ५८॥

जोधपुर के महाराजा विजयसिंहजी नाथद्वारा जाते बीच मे सिरियारी ठहरे।

स्वामीजी का वहीं विराजना सुनकर उनके उमराव दर्शन करने आए। स्वामीजी से बहुत से जिज्ञासा भरे तात्विक प्रश्न पूछे। सुन्दर समाधान पाकर बड़े ही प्रसन्न हुए। बोले—"महाराज! आप गृहस्थावास में रहते तो कई राज्यों की बागडोर अपने हाथों में संभाल सकते। ऐसी आपकी कुशल बुद्धि है।"

राज्य संभालते तो आखिर क्या होता? जाना तो नरक में ही पड़ता न? स्वामीजी बड़ी निस्पृहता से बोले—बुद्धि वही अच्छी है जो श्रेय की ओर ले जाये। जिस बुद्धिमानी के कारण आत्मा बन्धन में पड़े वह किस काम की?

बुद्धि जिणरी जाणिए जे सेवे जिन धर्म
अवर बुद्धि किण कामरी (जो) पड़िया बांधे कर्म

[भिक्षु दृष्टान्त ११२]

: ५१ :

रोटी के लिए धर्म क्यों छोड़ूं ?

रोट्या लेल्यो काई करणो पूछ ताछ ज्यादा कर।

भिक्षु बोल्या म्हे मी घर नहीं छोड्या रोट्यां खातिर ॥५१॥

एक बहन गोचरी बहरने (भिक्षा लेने) के लिए स्वामीजी से बार-बार विनती कर जाती। एक दिन स्वामीजी स्वयं ही उसके घर गोचरी चले गए।

बहराने के लिए ज्योंही बहन तैयार हुई तो स्वामीजी ने आहार की एषणा करते हुए पूछा—बाई! गोचरी बहराने के बाद तुझे हाथ तो धोने पड़ेंगे· किससे धोएगी ?

महाराज! गर्म पानी से धो लूंगी।

कहाँ धोएगी ?

इस बारी मे।

पानी कहाँ जाएगा ?

नीचे नाली मे।

स्वामीजी ने गवेषणा की सूक्ष्मताओ को बतलाते हुए कहा—ऐसे तो अजयणा (हिंसा) होगी हमे नहीं कल्पता।

महाराज! ये तो हमारे गृहस्थो के काम है ऐसे ही चलते रहते है आपको क्या लेना देना है? आप तो अपना आहार ले लीजिये।

उसको नहीं मानते देखकर स्वामीजी यह कहते हुए कि "तूं थारी सावज क्रियाइज नहीं छोड़ै तो मैं रोटी रै वास्ते म्हारी साची क्रिया किम छोड़ दू" और बिना बहरे ही लौट गए।

उनकी साधना की सतत जागरुकता आज भी आलोक रश्मिया बिखेर कर आदर्श दिखा रही है।

[भिक्षु दृष्टान्त ३२]

: ५२ :

गहरे भी कितने

महा मुश्किल है बात पचाणी सायर बंण कर रहणो।
भिक्षु बोल्या अरे हेमड़ा! मनैं न कल्पै कहणो॥८०॥

पीपाड़ और रींया के बीच स्वामीजी विहार कर रहे थे। एक अन्य सम्प्रदाय के मुनि स्वामीजी के निकट आए और एकान्त में कुछ परामर्श-सा करके चले गए।

छाया की ज्यों स्वामीजी के साथ ही चलने वाले विश्वास-पात्र मुनि हेमराजजी स्वामी ने जिज्ञासा की—गुरुदेव! वे क्यों आए थे?

यों ही कोई आलोचना (प्रायश्चित्त) करने।

क्या?

किसी अन्य की गुप्त बात प्रकट करनी नहीं कल्पती है। स्वामीजी ने रुखाई से उत्तर दिया।

हेमराजजी स्वामी स्वामीजी की गम्भीर मनोवृत्ति में गहरे पानी पैठकर रहस्य को पचाने की उनकी अद्भुत शक्ति को टटोलते रह गए।

[भिक्षु दृष्टान्त ५७]

मुंह मीठा ही होगा

सब चीजा मैं बीज जिसाही देखो फल पनपावै।
जाण अमल खाया मिश्री नै कद कड़वा पन आवै ॥६१॥

पाली मे चोथजी बोहरा नाम के व्यापारी की दुकान पर स्वामीजी ने दो वासती कपडा वहरा। वस्त्र वहराने के वाद चोथजी बोले—मैं आपको साधु नहीं मानता हूँ कपडा वहराने का मुझे क्या लाभ होगा ?

मिश्री खाने से मुंह मीठा होता है ?

जरूर !

कोई उसे फिटकरी (अमल) समझ के खाए तो ?

तो भी होता है।

स्वामीजी ने इस मर्म को स्पष्ट करते हुए वताया—साधु को देने से तो धर्म ही होता ह। कोई उसे असाधु समझे तो वह उसका अज्ञान है पर पात्र-दान का लाभ कहाँ जाने वाला है ?

[भिक्षु दृष्टान्त ६२]

: ५४ :

प्रभु के कासीद (सदेश वाहक)

समाचार साजन का मिलता हियो हेम हो ज्यावै।
म्हे कासीद प्रभु कै घर का तिण सूँ दुनिया चावै ॥६२॥

केलवा मे धर्म-प्रवचन हो रहा था। ठाकुर मोखम सिंहजी ने स्वामीजी से पूछा—गांव-गांव में आपकी चाह लग रही है, सैंकड़ों हजारों लोग आपको देख-देखकर प्रसन्न हो उठते हैं, जहाँ आप जाते हैं वहाँ आनन्द उल्लास उमड़ पड़ता है सो क्या कारण है ?

स्वामीजी दृष्टान्त शैली मे बोले—एक पतिव्रता के प्रवासी पति का सन्देश लेकर कासीद आया। पतिव्रता उसे देखते ही खिल उठी जैसे स्वयं उसका पति ही घर आया हो॥ कासीद का बड़ा ही स्वागत सत्कार किया उसने। ज्यों-ज्यों अपने प्रिय का समाचार पूछती उनके भेजे सन्देश को सुनती तो वह प्रफुल्लित हो उठती।

कासीद की इतनी भक्ति व मनुहार क्यों करती थी वह ?

पति का संदेश लेकर आया है इसीलिए।

त्यों ही हम प्रभु के कासीद है। दुनियाँ को भगवान् का संदेश (प्रवचन) सुनाते हैं। लोग अपने प्रभु के कासीद की भक्ति करते हैं, उन्हें चाहते हैं, बार-बार उनसे भगवान् की कही बातें पूछते हैं।

भक्त और भगवान् के बीच भक्ति के माध्यम का रहस्य भरा उत्तर पाकर ठाकुर साहब का मन प्रसन्न हो गया।

[भिक्षु दृष्टान्त ८७]

: ५५ :

आपतो 'मोहर' के लायक हैं

प्रभु आप हो मोहरा लायक म्हारी शक्ति ओछी।
दुनिया में अज्ञान दशा भी चरम सीम तक पहुँची ॥८३॥

स्वामीजी ढूढार मे विहार करते-करते एक गाव मे आए। वहाँ के बड़े जागीरदार (ठाकुर) स्वामीजी के दर्शन करने आए। नमस्कार करके एक अधेली (अठन्नी) स्वामीजी के चरणों में चढ़ाई ·· ।

स्वामीजी ने कहा—"हम नहीं लेते"।

ठाकुर सकपकाए—सोचा—बाबा इतने से राजी नहीं हुए। दीन स्वर से हाथ जोड़कर बोले—महाराज! आप तो बड़े हैं, 'मोहरों' के लायक है पर मेरी सामर्थ्य इतनी ही है अबकी बार अगर आप आएँगे तो मैं एक रुपया चढ़ाने की चेष्टा करूंगा· ···।

स्वामीजी उनके सरल अज्ञान पर द्रवित हो गए बोले—"जिसने घर का पैसा भी छोड़ दिया है, वह दुनिया का पैसा किसलिए इकट्ठा करेगा। साधु का व्रत है—अपरिग्रह, निस्पृहता।

निस्पृह मुनि के लिए पैसा मिट्टी से भी निकम्मा है।

ठाकुर ने ऐसे निस्पृही "सम लोष्टाश्म काञ्चन!" भिक्षु के दर्शन पाकर अपने को धन्य माना।

[भिक्षु दृष्टान्त ८६]

: ५६ :

लेने का देना पड़ा

ईर्ष्यालु मानव कै प्रायः गत गलै में आवै।
शोभाचन्द छन्द भांख्या जद बावेचा शरमावै ॥६४॥

नाडोलाई एक गांव था, जहाँ का शोभाचन्द सेवक कविता बनाया करता था। बावेचा जाति के कुछ व्यक्तियों ने शोभाचन्द को बुलाया, बोले—भीखणजी की निंदा में कुछ कवित्त वगैरह बनाओ। दस बीस रुपये की भेंट पूजा कर देंगे.....।

पहले मैं भीखणजी से बातचीत करूंगा—शोभाचन्द ने कहा। पास के खैरवा गांव मे बातचीत के लिए गया।

स्वामीजी के निकट आते ही उनके स्नेहिल व्यक्तित्व और मधुर व्यवहार से शोभाचन्द की आधी धारणाएँ बदल गई।

शोभाचन्द—आप भगवान् की उत्थापना करते हैं?

भिक्षु स्वामी—भगवान् के वचनों पर ही तो हमने घर छोड़ा है, मुनि जीवन की कष्टचर्या स्वीकार की है. उनकी उत्थापना कैसे कर सकते हैं?

शोभाचन्द—मेरा मतलब मन्दिर की उत्थापना करने से है।

भिक्षु स्वामी—मन्दिर में तो हज़ारों मन पत्थर लगता है, हम तो सेर दो सेर पत्थर भी नहीं उत्थापते (उलटते)।

शोभाचन्द—यानि आप प्रतिमा की उत्थापना करते हैं उसे पत्थर कहते हैं।

भिक्षु स्वामी—हम साधु हैं। सत्य हमारा व्रत है, झूठ कभी नहीं बोलते। जो प्रतिमा सोने की है उसे सोने की, चाँदी की है उसे चांदी की, सर्व धातुमय प्रतिमा को सर्व धातु की और पाषाण की प्रतिमा को पाषाण की कहते हैं।

विविध प्रश्नोत्तर करने के बाद शोभाचन्द स्वामीजी के वैराग्य और स्पष्टता के सामने झुक गया। बोला—ऐसे महा-मुनियों की निन्दा मैं तो नहीं कर सकता। उसने दो छंद बनाकर स्वामीजी के जीवन और सिद्धान्त की प्रशस्ति की···

जब उन लोगों ने जाना कि शोभाचन्द ने भीखणजी से बातचीत करके छन्द बना लिए हैं, तो सुनाने का आग्रह करने लगे, और वह भी भीखणजी के श्रावकों के सामने

बात की बात में लोगों का जमघट लग गया। एक प्रमुख व्यक्ति ने कहा—शोभाचन्द ने भीखणजी से भेंट की है। भीखणजी को जिस प्रकार इसने समझा है उसे बिल्कुल तटस्थ दृष्टि से कविता के रूप में प्रकट किया जाता है सभी सज्जन सुनें। कवित्त आने लगे—

छन्द

अनभय कथणी रहिणी करणी अति आटूइ कर्म जीपं अधिकारी
गुणवंत अनत सिद्धंत कलागुण प्राक्रम पाहोच विधा गुण भारी
शास्त्र सार वत्तीस जाणं सहु केवलज्ञानी का गुग उपकारी
पंच इंद्री कूं जीत न मानत पाग्वड साध मुनिंद वडा सत धारी
साधना मुक्ति का वास वन्दा सहु भिक्खम स्वाम सिद्धंत है भारी
स्वामी पर भव के साधन साच हे वाचै है सूत्रकला विस्तारी
तेरा हो पंथ साचा त्रिजं लोक मे नाग सुरेन्द्र नमें नर नारी
सुणि वात है साच सिद्धंत सुजान की वोहत्त गुणी करणी वलिहारी
पृथवी के तारक पचमें आर मे भीपण स्वामी का मारग भारी ॥

और यों दो कवित्त पूरे ही नहीं हुए थे कि सुनाने का आग्रह करने वाले लोग धीरे धीरे खिसक गए। तटस्थ व्यक्तियो ने जहाँ प्रसन्नता प्रकट की वहाँ उन्हें अपनी मूर्खता पर मुह नीचा करना पडा।

सूर्य के प्रकाश की नाईं स्वामीजी की महिमा से भी वे अज्ञात नहीं रह सके भले ही आँख मींच कर अधेरा करने की चेष्टा की हो ।

[भिक्षु दृष्टान्त ६६].

: ५७ :

भावना के पीछे

शिव सुन्दरं विना सत्य भी नहीं सत्य सो लागै।
त्याग करै वैराग्य वधावण या भांडन नै त्यागै॥ ६५॥

सत्य भी भयंकर और कटु वन सकता है। धर्म-आचरण भी वदनामी करा देता है, अगर उसके पीछे विवेक की निर्मल दृष्टि न हो, भावना शुद्ध न हो।

स्वामीजी के निकट एक व्यक्ति आया और वैराग्य का अभिनय करते हुए बोला—स्वामीजी मुझे असंयति को दान देने का त्याग करवादें। स्वामीजी ने उसकी संगूढ दुर्भावना को पकड़ते हुए कहा—तू धर्म, श्रद्धा या वैराग्य से त्याग करता है तव तो ठीक। "बाकी मुझे (धर्म को) वदनाम करने के लिए त्याग करता है तो भर पाये तेरे त्याग!! ""।

[भिक्षु दृष्टान्त ११८]

: ५८ :

मतवाद का पर्दा

मत पक्षी के गुण अवगुण तो बिल्कुल ध्यान न आवै।
भीखणजी नै खोटो कहै वो ही वामै पूजावै॥६६॥

स्वामीजी ने कहा—लोगों की बुद्धि पर पर्दा गिरा हुआ है। वे सत्य असत्य का विवेक नहीं रखते। बस इतना ही जानते है हम अच्छे और भीखणजी बुरे।

एक बहु रूपिया (भांड) साधु का वेश पहन कर आया।

श्रद्धान्ध लोगों ने पूछा—आप किस के टोले के है?

डूंगरनाथजी के।

आपका नाम?

पत्थरनाथ।

क्या जानते हैं, कुछ अध्ययन किया है?

और-तो कुछ नहीं सिर्फ इतना जानता हूँ हम अच्छे और भीखणजी बुरे।

बस! तब-तो सब कुछ जानते ही है। मत्थएण वंदामि कहकर चरणों में झुक गए।

—[भिक्षु दृष्टान्त १५१]

: ५६ :

लोकस्तदनुवर्तते

असर बडाँ को ही छोटा पर सब कामां मैं पडसी।
पड़िकमणो वैठा किया आगे सूत्या-सूत्या करसी ॥६७॥

स्वामीजी की अवस्था कोई ७० वर्ष से ऊपर चली गई थी। पर मन में नव-जवान का शौर्य उभर रहा था। शरीर के कुछ शिथिल होने पर भी उनकी व्रत-निष्ठा शिथिलाचार को चुनौती दे रही थी। वे अपनी कर्त्तव्य विधियों में अब भी "सहस्राक्षः सहस्रपात्" थे। किसी ने निवेदन किया—गुरुदेव! अब तो आप आराम करें। प्रतिक्रमण विधिपूर्वक खड़े-खड़े करने में अधिक कष्ट होता होगा। इसलिए बैठकर कर लीजिए।

भिक्षु स्वामी ने एक अर्थ भरी दृष्टि से देखा—भाई! दुनियाँ अनुकरण प्रिय है।

मैं यदि खडा-खडा प्रतिक्रमण करता हूँ तो आने वाले बैठे-बैठे करने की सोच सकते है और मैं यदि बैठा-बैठा करने लग जाता हूँ तो भावी होनहार लेटे-लेटे करने में भी कब चूकेंगे?

शिष्य दीर्घप्रज्ञ स्वामीजी के आदर्श जीवन पर श्रद्धावनत हो गए।

[भिक्षु दृष्टान्त २१२]

: ६० :

विषमें भी अमृत

है महा मुश्किल विष पीकर भी मुख सूँ अमृत झरणो।
नाच दिखावे है सन्तानै आछो नहीं उफणणो ॥६८॥

स्वामीजी की प्रज्ञा इतनी विचित्र और इतनी विलक्षण थी कि वह विष में भी अमृत खोजती रहती, शूलों में फूल का सौरभ ढूढ़ लेती।

एक बार स्वामीजी का व्याख्यान जमा हुआ था। परिषद् मन्त्रमुग्ध-सी सुन रही थी कि सहसा कुछ अच्छे-अच्छे घरों के व्यक्ति रंग में भंग करने के लिए वहाँ आकर गाने वजाने नाचने लग गए।

श्रोताओं का हृदय उनकी इस मूढ़ता पर उत्पीड़ित-सा हो गया, चेहरे कुछ तमतमा उठे।

स्वामीजी ने वातावरण को विस्फोटक वनते हुए देखकर स्थिति को सम्भाला—श्रावक लोग उत्तप्त से क्यों हो रहे हैं ?

ये निरर्थक विघ्न डाल रहे हैं—श्रावकों ने कहा।

स्वामीजी—आगमों में वर्णन आता है—तीर्थंकरो के समक्ष इन्द्र अपने परिवार के साथ आकर नृत्य गायन करते हैं, सुना है ?

हाँ महाराज !

तो हम उन्हीं की सन्तान है।

इन्द्र नहीं तो ये सेठ साहूकार आकर हमारे समक्ष नृत्य करते है तो इसमें नाराज होने की क्या बात है ?

श्रावकों का मन और बदन खिल उठा। नाचनेवाले सेठ लोग अपनी मूढ़ता पर पछताते गधे के सींग की तरह न जाने कहाँ गायब हो गए

[भिक्षु दृष्टान्त ६५]

: ६१ :

आंख मिचौनी

मन सूं छानी हुवै न चोरी सही बात है आही।
म्हारै खातिर करज्यो सीरो आकद कहै जमाई ॥६९॥

कुछ मुनि अपने निमित्त हुई हिंसा का उपभोग भी करते हैं और यह कहकर बच भी निकलते हैं कि हमने कब कहा था कि हमारे लिए अमुक कार्य करो।

स्वामीजी ने उदाहरण दिया—जंवाई ससुराल जाता है तब उसकी खातिरदारी में विविध पकवान बनाए जाते हैं और जवांई मजे से खाता है। कहने का मौका आने पर वह कहता भी है—मैंने कब कहा था मेरे लिए हलुआ बनाओ—(पर बनने पर खा भी जाता है)।

वैसी ही वे अपने आप के साथ आँख मिचौनी खेलते हैं। मन में जानते हैं कि यह हमारे लिए हो रहा है, पर मुँह से कहकर कि हमने तो नहीं कहा—आत्म-वंचना का जहर उगलते हैं। अगर वे उनके उपयोग का त्याग कर दें तो देखें कौन उनके लिए बनाता है?

[भिक्षु दृष्टान्त ६४]

: ६२ :

कदाग्रही को ज्ञान न दो

ज्ञान न देवै हर कोई नै पैली पात्र सम्भालै।
मल स्यू भर्‌यै ठीकरै मैं तो गावो घी कुण घालै ॥७०॥

हीरजी नाम के कदाग्रही एक व्यक्ति ने स्वामीजी से उलटे सुलटे प्रश्न पूछे। स्वामीजी मौन रहे।

बार-बार जब उत्तर का आग्रह करने लगा तो स्वामीजी ने उसकी योग्यता को नापते हुए कहा—गंदगी से सने हुए ठीकरे मे शुद्ध घी डालने वाला कौन होता है ?

मूर्ख।

तुझ से कदाग्रही व्यक्ति को ज्ञान देने में भी तो वैसा ही .

सचमुच स्वामीजी की आन्वीक्षिकी प्रज्ञा में ज्ञानदान करने से पहले पात्रापात्र की पूर्ण परख होती थी।

[भिक्षु दृष्टान्त २२३]

: ६३ :

अपात्र को ज्ञान

"मत अजोग नै ज्ञान धरावो" आगम साफ पुकारै ।
गमां सिखाकर खड्यो कर्यो तूं तो दुस्मन साधांरै ॥ ७१ ॥

शास्त्र में पात्र को ज्ञानदान करने की जितनी प्रशंसा की है उससे भी अधिक अपात्र को ज्ञान देने की निन्दा की है। अयोग्य को ज्ञान देना बन्दर के हाथ में तलवार देने से कम नहीं है।

अलग-अलग चातुर्मास करके आने वाले मुनिगण स्वामीजी के समक्ष बैठे-बैठे अपनी विहार-चर्या के संस्मरण सुना रहे थे। एक मुनि बोले—

गुरुदेव ! मैंने अमुक व्यक्ति को "गमा" सिख लाई है।

उस व्यक्ति की पात्रता स्वामीजी से छिपी नहीं थी—उपालम्भ के स्वर में बोले—तूने उसे "गमा" क्या सिखलाया है साधुओं के लिए एक दुश्मन खड़ा कर दिया है।

स्वामीजी की यह अनुभव वाणी शाश्वत सत्य को बतला रही है। जिसे भगवान् महावीर ने—"तवो आवायणिज्जा थद्धे, लुद्धे, वुग्गाहिए" (तीन को ज्ञान नहीं देना चाहिए क्रोधी, लोलुपी, और कदाग्रही को) कहकर स्पष्ट किया था।

भगवती सूत्र के तत्वज्ञान का गम्भीर प्रकरण

: १५ :

समझे भी क्या ?

महाराज ! शास्त्रों मे वर्णन आया है तो लकड़ी का तो कैसे हो सकता है जरूर सोने का ही होगा—नगजी ने कहा—

स्वामीजी ने फिर चुटकी लेते हुए परीक्षा की 'साधु ओलखना की' ढाल मे "साध्विया ने जड़णो चाल्यो" पद है सो धविया (धमनिया) छोटे लुहार की है या वड़े लुहार की ?

महाराज ! शास्त्रों में आया है सो छोटे लुहार की तो कैसे होगी ? कोई वडे लुहार की ही होगी।

स्वामीजी ने होठो में ही हंसते हुए वीर भाणजी की ओर देखा—उनकी हंसी का यह मर्म अव विल्कुल खुल गया था। वंजर भूमि पर की गई मेहनत किस प्रकार निरर्थक होकर हास्यास्पद वन जाती है "यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्" के अच्छे उदाहरण के साथ स्वामीजी ने समझाया।

[भिक्षु दृष्टान्त २२०)

: ६५ :

संस्कृति का ज्ञान

म्हे हा इतरा साध मूरत्यां थे हो किती वतावो।
अवसर चूक्या पछै के हुवै वैठ्या गोता खावो ॥७३॥

स्वामीजी को कितनेक साधु मिले। वात-चीत के दौरान में पूछा—कितनी मूरतियाँ हो ?

उन्होंने अपनी संख्या वतला दी। स्वामीजी आगे निकल गए।

वे तुम्हें भगत (वैष्णव) वना गए। तभी मूरतियाँ पूछा न ? एक ने कहा।

मुनिजी विदक गए, इसका वदला लेने के लिए आए स्वामीजी के पास।

भीखणजी ! कितनी मूरतियाँ हो ?

हम तो मूरति नहीं "ठाणा" कहलाते है।

स्वामीजी को उसके आने का उद्देश्य ताड़ते देर न लगी।

कुछ विभ्रान्त-सा वह स्वामीजी को टुकर-टुकर कर निहारने लगा।

अब पछताने से क्या हो सकता है वह बात तो तभी गई—स्वामीजी ने कहा। अपनी संस्कृति के प्रति अनजान व असावधान रहने की मूर्खता पर सिवाय घूरने के अब और क्या उपचार था ?

[भिक्षु दृष्टान्त १०२]

: ६६ :

धर्म किसमें ?

गहन बात भी सरल तरीके सूं समझू समझावै ।
धर्म कवै भाठो खोस्यां तो कर में भाठो आवै ॥ ७४ ॥

स्वामीजी से किसीने पूछा—एक बालक पत्थर लेकर चींटिया मार रहा है हम उसे रोक दें तो क्या होगा ?

स्वामीजी—कैसे ? हृदय-परिवर्तन करके (समझाकर) या जबरदस्ती ?

प्रश्न कर्त्ता—मानलो वह समझता नहीं है तो उसके हाथ का पत्थर छीनकर उसे हिंसा करने से रोक दें तो ?

स्वामीजी—उसके हाथ से छीनोगे तो तुम्हारे हाथ में क्या आएगा ?

पत्थर !

तो बस यही हुआ तुम्हारे हाथ पत्थर ही लगेगा धर्म नहीं ।

धर्म कोई चींटियों को बचाने में या कीड़ों-मकोड़ों के पोषण करने में नहीं है धर्म भावों में हैं, विचारों में दया आने पर ही धर्म होता है और वह भी हृदय-परिवर्तन के द्वारा न कि बलात्कार के द्वारा, बलात् थोपी जाने वाली अहिंसा को स्वामीजी ने अहिंसा ही नहीं माना है वह तो विचारों की हिंसा है।

[भिक्षु दृष्टान्त १२४]

चौगुनी का लड्डू

राखै गुण रो मोह मोह संस्था रो छोडै दूरो।
है लाडू तो असली चाहे खाडो हो या पूरो॥ ७५॥

स्वामीजी की दृष्टि सारग्राहिणी थी। वस्तु की अल्पता या वहुलता पर उनकी दृष्टि न टिककर उसकी शक्तिमत्ता और शुद्धता पर टिकती थी' जव वे सत्य के लिए गुरु और सघ की ममता का त्याग कर निकले तो वहुत दिनों तक तो उनके सघ मे साध्विया दीक्षित नहीं हुई थी। इस स्थिति पर व्यंग करते हुए एक व्यक्ति ने कहा—भीखणजी! तुम्हारे संघ मे साध्विया नहीं अतः तुम्हारे तीन ही तीर्थ हैं, लड्डू तो है किन्तु खण्डित है।

स्वामीजी ने उसकी सख्यापरक दृष्टि पर हंसते हुए कहा—भले ही खण्डित हो पर है तो चौगुनी का लड्डू (शुद्ध घी, उचित मिष्टान्न आदि से युक्त) खाने से तृप्ति मिलेगी न?

संघ में भले ही तीन तीर्थ है किन्तु जो है वे तो शुद्ध पवित्र है न? दुनिया का भला होना है तो उनसे ही हो जाएगा? धीरे-धीरे उनके संघ मे साध्वियों की दीक्षा भी उत्कृष्ट गति पर पहुँच गई।

[भिक्षु दृष्टान्त २२]

: ६८ :

नीति के पीछे बरकत

हुवै पछै धमचोल न तिण सूं पहली वड़ा खरावै।
दीक्षा देता तीन सत्यां नै पहली खूब बजावै ॥ ७६ ॥

एक प्रसिद्ध कहावत है "नीति के पीछे बरकत होती है" और इसलिए आर्य संस्कृति में नीति की शुद्धता पर बहुत बल दिया गया है। स्वामीजी की जीवन घटना से यह बात भली भांति प्रकट हो जाती है कि स्थिति की कोई परवाह नहीं करके उन्होंने सदा ही विशुद्ध और उत्कृष्ट नीति रक्खी।

एक बार तीन बहनें (संवत् १८२१) स्वामीजी के पास दीक्षा की प्रार्थना करने आई। स्वामीजी ने उनकी विविध परीक्षा लेने के बाद कहा—अभी तक कोई साध्वी हमारे संघ में नहीं है यदि तीनों में से एक भी कभी बिछुड़ गई तो बाकी दोनों को संलेपणा (तपस्या) करनी होगी। क्योंकि दो साध्वियां रह नहीं सकती हैं यदि यह शर्त स्वीकार हो तो दीक्षा लेना ……।

तीनों ही बड़े आत्मबल के साथ स्वीकार करके दीक्षित हुईं उनके नाम थे कुसालाजी, मटुजी और अजबूजी। ये तेरापंथ की आदि साध्विया थीं।

इसके बाद शासन में साध्वियों की दीक्षाएं बहुत हुईं, किन्तु प्रारम्भ काल में स्वामीजी की नीति की तेजस्विता दर्शनीय है और संघ की श्री वृद्धि का मूल भी उसीमें छिपा है।

[भिक्षु दृष्टान्त १४७]

वुद्धि के दिवालिए

चोतर लखणै वाले स्यूं भाई पड़्या पल्लो क्यानें ।
कुण समझावै किया समझावै अक्कल कै आधानें ॥ ७७ ॥

धन वाले को धन पर विश्वास होता है, और सत्ता वाले को सत्ता पर, किन्तु वुद्धि वाले को अपनी वुद्धि पर भरोसा नहीं रहता। एकवार स्वामीजी ने कहा—जिन्हें वुद्धि से परखने पर भी दूसरों को पूछे विना अपनी वुद्धि पर विश्वास नही होता वे वुद्धि के दिवालिए ही हैं—एक उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया किसी वैद्य ने एक अन्धे की आंख का इलाज करके आखों की ज्योति अच्छी करदी। जव वैद्य ने बधाई मागी तो उस व्यक्ति ने कहा—पहले लोगों से जाकर पूछूगा। मुझे दीखता है या नहीं।

वैद्य ने कहा—मूर्ख! लोगों से पूछने की क्या जरूरत है? तेरी आंखें ही कह देगी तुझे दीखता है या नहीं।

त्यों ही जो व्यक्ति तत्व समझ के भी अन्ध लोकमत पर विश्वास करके चलते है वे वैसे ही मूर्ख हैं; उन्हें तत्व समझाने की चेष्टा करना वृथा है।

[भिक्षु दृष्टान्त ८०]

: ७० :

क्षमापना कब ?

भूलां नै तो भूल्यां सूं ही खमत खामणा होवै।
स्वामीजी तौ बरज्यो तोहि कपूरो बात कचोवै ॥७८॥

सिरियारी में स्वामीजी ने चातुर्मास किया। वहाँ पोतिया बंध सम्प्रदाय के एक कपूर जी नाम के मुनि थे। अपनी सम्प्रदाय की बहनों से उनके कुछ खटपट चलती थी। सम्वत्सरी आने पर स्वामीजी के पास से गुजरते हुए बोले—मैं उनसे "खमत खामना" करने जाता हूँ। स्वामीजी उनकी नाड़ी पहचानते थे, बोले—क्षमा याचना करने जाते हो पर कहीं उल्टा कदाग्रह तो खड़ा करके नहीं आवोगे ?

नहीं-नहीं ...

बहनों के पास आए और नाक भौंह सिकोड कर बोले—तुमने तो हमारे साथ जो कुछ नीचता की सो की, पर हम बड़प्पन का विचार करके खमाते है।

सुनकर वहनें तमक कर बोलीं—नीचता तुमने की या हमने। और यों वात बढ़ते-बढ़ते गहरी तनातनी हो गई।

कपूरजी स्वामीजी के निकट आकर बोले—आपने कहा वैसा ही हुआ।

स्वामीजी निष्कर्ष की भाषा मे वोले क्षमा याचना तभी हो सकती है जहाँ सरलता हो और दोषों को हजम करने की क्षमता हो ' ' "।

[भिक्षु दृष्टान्त ८२]

: ७१ :

गूढ प्रश्न सरल उत्तर

समझदार गहरी वातां भी सीधी कर समझावै।
हलको भारी हुवै जीव किम किम परभव में जावै ॥७९॥

स्वामीजी का चिंतन परिपक्व था जिसके फल बड़े ही स्वादिष्ट और सुपाच्य होते। गहरी से गहरी गुत्थी को अत्यन्त सरल और सरस तरीके से सुलझाकर रख देना स्वामीजी की सहज वृत्ति थी।

एक बार स्वामीजी सिरियारी पधारे—वहाँ का एक खीं वेसरा वोहरा जिज्ञासा लेकर स्वामीजी के निकट आया—पूछा—गुरुदेव ! जीव नरक गति में जाता है उसे नीचा ले जाने वाला कौन है ?

स्वामीजी—कूएँ मे पत्थर फेंकने पर उसे नीचे कौन ले जाता है ?

वोहरा—अपने भारीपन से ही जाता है।

स्वामीजी—वैसे ही जीव कर्मों के भार से अपने आप नीचे चला जाता है।

वोहरा—अच्छा! देव गति में जाने वाले जीव को ऊपर कौन ले जाता है?

स्वामीजी—पानी पर लकड़ी तैरती है तो क्या उसके नीचे कोई हाथ का सहारा देने वाला भी है?

वोहरा—नहीं! वह हल्केपन से तैरती है।

स्वामीजी—वैसे ही प्राणी कर्मों की लघुता के कारण ऊपर की गति करता है। जिस प्रकार पैसे को पानी में डालते ही डूब जाता है परन्तु जब उसे ही कूट पीटकर उसकी कटोरी बनाकर पानी में छोड़ दें तो वह तैरने भी लग जाता है वैसे ही प्राणी अपने कर्मों से संसार में डूबता है और जब तप संयम के द्वारा आत्मा लघु बन जाती है तो वह संसार से तर सकती है।

वोहरा समाधान की तृप्ति पाकर नमस्कार करके चला गया।

[भिक्षु दृष्टान्त १४१, १४२, १४३]

: ७२ :

शब्दों की पकड

निकमा शब्दां कै चक्कर मैं पड़कर ओछा ताणै।
कही महात्मा धर्म हठी नै ल्याया शीघ्र ठिकाणै ॥ ८० ॥

स्वामीजी का दृष्टिकोण अन्तरभेदी था। वे किसी भी वस्तु के बाह्य रूप में नहीं उमल कर उसके अन्तरंग को पकड़ना चाहते थे। तत्त्व के शब्दों को नहीं पकड कर भावों को देखते। यदि कोई शब्दों में उलझ पड़ता तो उन्हें बहुत अखरता।

एकबार पुर में प्रवचन करते हुए स्वामीजी ने कहा—भगवान् ने दश प्रकार का मुनि धर्म बताया है।

वीराणी जाति के जयचन्द नाम के व्यक्ति ने बीच ही में कहा—नहीं दश प्रकार का यति धर्म ।

स्वामीजी—भले ही श्रमण धर्म, महात्मा धर्म कहो न बात एक ही है ऊपर के आवरण को क्या तथ्य को देखो · ?

[भिक्षु दृष्टान्त २१३]

: ७३ :

विवाद का निपटारा

वाद चढ्योड़ा नै भी चातुर मिन्टा में समझावै।
रस्सी मिलगी नापण खातर जद ठंडा हो ज्यावै ॥८१॥

परस्पर विवाद करते दो मुनि स्वामीजी के निकट आए—

एक बोले इतनी दूर से इसके पात्र में से पानी गिरता आया है।

दूसरे ने कहा—नहीं इतनी दूर नहीं उतनी दूर थी।

बढ़े हुए व्यर्थवाद को सुलझाने के लिए स्वामीजी ने एक रस्सी देते हुए कहा—जाओ दोनों नाप आओ।

अब दोनों ही शांत हो गए।

स्वामीजी की दृष्टि में इनका विवाद पानी को मथने जैसा था जिसका अंतिम परिणाम व्यर्थ परिश्रम के सिवाय और कुछ भी नहीं।

तभी तो शुष्क विवाद में उनका विश्वास नहीं था।

[भिक्षु दृष्टान्त १६७]

: ७४ :

विवाद का अंत

मूल हाथ नही लगै प्याजनै चाहे जितो उखेडो।
पण लोलुपता हे किणरै ओ कर दियो आप निवेडो ॥८२॥

स्वामीजी के सामने जब भी विवाद का प्रसंग आता तो वे व्यक्ति को अंतर-दर्शन का अवसर देते, इस अवसर को पाकर व्यक्ति स्वतः अपनी दुर्बलता को पहचान कर आत्मोन्मुख हो जाता।

दो मुनि थे। परस्पर एक दूसरे को अधिक लोलुपी (चटोरा) कह रहे थे। दोनों की समस्या स्वामीजी के सामने आई।

स्वामीजी ने विवाद का अंत करते हुए कहा—दोनों ही मेरी आज्ञा के बिना विगय खाने के त्याग कर दो। जो पहले आज्ञा चाहेगा वही लोलुपी सिद्ध होगा।

चार मास तक दोनों ने कोई विगय नहीं खाई फिर एक ने आकर स्वामीजी से क्षमा मांगते हुए विगय खाने की आज्ञा चाही, दूसरे के लिए अपने आप मार्ग खुल गया और फिर कभी विवाद नहीं उठा।

[भिक्षु दृष्टान्त १६८]

फेंका हुआ पत्थर गिरेगा ही

पूरब संचित अघ ही जगमें सब नें चक्र खुवावै।
पत्थर फैंकणों छोड़ दियो तोहि फैंक्योड़ो तो आवै ॥८३॥

कहीं कहीं पर मान लिया गया है—"समरथ कू नही दोष गुसांई"—किंतु भगवान् महावीर के दर्शन और स्वामीजी के भाष्यों मे इस तथ्य को बिल्कुल ही स्थान नहीं मिला। वहाँ माना गया है गृहस्थ हो चाहे साधुकृत कर्म का भोग सबको ही भुगतना पड़ता है। इस तथ्य पर जिज्ञासा करते हुए एक व्यक्ति ने पूछा—महाराज! साधु ने जब सर्व पाप द्वारों का निरोध कर लिया है तो फिर भी उसको कष्ट, वेदना आदि क्यों भोगने पड़ते है ?

स्वामीजी—जिसने अपने शर पर पत्थर उछाला है वह गिरकर चोट करेगा या नहीं ?

जिज्ञासु—हां, वह गिरेगा भी और चोट भी लगेगी।

स्वामीजी—और फिर कभी नहीं उछाले तो ?

जिज्ञासु—तो नहीं लगेगी।

स्वामीजी—वैसे ही साधु ने जो कर्म पहले किए थे वे तो भुगतने ही पड़ेंगे यदि कर्म नहीं करता है तो आगे दुःख नहीं होगा…।

[भिक्षु दृष्टान्त १२२]

: ७६ :

श्रावक और वेश्या

सीधी सादी उचित बात सुण कुण नही रस्तै आयो।
आटै नै पाणी कै लोटै स्यू झटपट समझायो ॥८४॥

तत्त्व को नहीं समझकर कोरे शब्दो को पकड़ने वाले अपने आपमें उसी प्रकार उलझ जाते है जैसे बैल अपनी रस्सी में, अगर कोई सुलझाने वाला नहीं मिले तो वे उलझे ही पड़े रहते है।

एक बार स्वामीजी खैरवा में गए "ओटा" नाम का एक व्यक्ति तर्क-कुतर्क करता हुआ बोला—तुमतो श्रावकों को देने मे भी पाप और वेश्या को देने मे भी पाप मानते हो, अतः श्रावक और वेश्या को समान कर दिया।

स्वामीजी ने पूछा—कच्चे पानी का लोटा भरकर तुम्हारी मा को पिलाने में क्या होगा ?

ओटा—पाप !

और किसी वेश्या को पिलाने में ?

ओटा—पाप ही होगा !

तो फिर क्या तुमने ही मां और वेश्या को समान मान लिया है ?

वास्तव मे जब तक दृष्टि भेद को नहीं समझा जाए तब तक तत्त्व का हार्द हाथ नहीं लगता। केवल उसका अनर्थ किया जाता है।

[भिक्षु दृष्टान्त २६]

तुम नाराज क्यों ?

मूँढ में लाडू सो आया समभै मनुज मिजाजी।
उल्टो न्यारे हुयो फायदो थे क्यूँ हुवो विराजी ॥८५॥

किसी ने स्वामीजी से द्वेष उगलते हुए कहा—भीखणजी! तुम्हारे श्रावक दान नहीं देते। उसमें पाप मानते है, बड़े कंजूस है...... ।

स्वामीजी ने उसकी बात उसीके पल्ले बाँधते हुए कहा—इससे तुम नाराज क्यों हुए? मान लो किसी गाव मे कपड़े की चार दूकाने है उनमे से तीन दूकानदार व्यापार बंद करके किसी विवाह आदि मे चले गए है और गाव के जितने भी ग्राहक है सब उसी एक दुकान पर आते है, खूब व्यापार चलता है तो उस व्यापारी को खुशी होगी या नहीं?

वाह! खुशी क्यों नहीं होगी जरूर होगी!

स्वामीजी—तो समझ लो कि तेरापंथी दान नहीं देते है, तो नगर के जितने भी मागने वाले है वे सब तुम लोगों के पास आएँगे और तुम तो दान मे पुण्य जो मानते हो यह खूब पुण्य कमाने का अवसर तुम्हें मिला है तुम नाराज क्यो हुए?

अब बोलें भी तो क्या?

दान पुण्य की शेखी बघारने वाले बहुत होते है, पर प्रायः देने का नाम आने पर चुपके से खिसकते भी देर नहीं लगाते।

[भिक्षु दृष्टान्त १४६]

: ७८ :

सत्य भी क्या मोत !

सोलै आना साची पण आ करड़ी है अन्नदाता।
साची है जद के डर यूं कहि राखी सागी गाथा ॥८६॥

स्वामीजी का दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट था। खरा था, इसलिए संभव है कुछ खारापन भी आजाए और इसी बात की ओर इंगित करते हुए भारीमालजी स्वामी ने निवेदन किया—गुरुदेव ! आपने जो यह—

"छै लेस्या हूंती जद वीर मैं जी हूंता आठूं ही कर्म
छद्मस्थ चूक्या तिण समैजी मूरख थापै धर्म"

पद्य बनाया है सो बहुत कड़ा है।

स्वामीजी ! कड़ा भले ही हो पर सचा है या नहीं ?

भारीमालजी स्वामी—बात तो बिल्कुल सोलह आना ठीक है।

स्वामीजी—तो फिर क्या डर है ?

जो अपने सिद्धान्तों के प्रति सच्चे होते हैं उन्हें स्वप्न में भी कोई भय नहीं होता।

[भिक्षु दृष्टान्त १७८]

परिणाम दर्शी

पुण्यवान् मानव रै आवै लिछमी दौड़ी दौड़ी।
देख ज्योतिषी दंग रह गयो आ पांचा की जोड़ी ॥ ८७ ॥

एक बार स्वामीजी अपने शिष्य—भारीमालजी, खेतसीजी, वेणीरामजी, और हेमराजजी के साथ शौच भूमि से लौट रहे थे। एक सामुद्रिक ने पाँचों की विलक्षण जोडी को देखा तो दग रह गया। होनहार रेखाओं को पढ़कर उनका परिचय पूछकर बोला—आप पाँचों महापुरुष एक ही स्थान पर कैसे मिल गए ?

मेरे सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार आप पाचों ही किन्हीं पाच राज्यों के राजा बनने वाले थे।

स्वामीजी ने बड़ी निस्पृहता के साथ उत्तर देते हुए कहा—राजा होते तो फिर क्या होता ?

आनन्द करते ?

फिर।

फिर क्या ?

स्वामीजी और गहराई मे उतरे—क्या राजेश्वरी नरकेश्वरी नहीं कहा जाता है ?

वह तो सन्न रह गया। राज्य, ऋद्धि, काम और सभी का अन्तिम परिणाम तो दुःख है। इसी परिणाम को देखने वाले दुःख निरोध का सच्चा मार्ग पा सकते है।

: ८० :

वनो वनाई ब्राह्मणी

वणी वणाई वणै बामणी (पण) लखण डूमणी हारा ।
विना साधुता साध वणाणिया काम बिगाड़ै सारा ॥८८॥

यदि वृत्ति नहीं वदलती तो स्थिति वदलने से क्या लाभ ? यदि आत्मा पवित्र नहीं हुई तो बाह्य शुद्धि का क्या अर्थ ? ऐसा स्वामीजी ने कहा—साधु का रंग रूप बनाने से कल्याण नहीं होगा अगर साधना की शुद्धि नहीं है । आचरण नहीं वदल कर कोरा आवरण (ऊपर का वेप) वदलने वाले "वणी वणाई ब्राह्मणी" के समान हैं ।

एक गांव में भेर (भील) जाति की ही कुल वस्ती थी । व्यापार के निमित्त इधर उधर से गुजरने वाले महाजनों के भोजन की सुविधा के लिए उन लोगों ने एक अपनी जाति के गुरु की विधवा पत्नी को ब्राह्मणी का वेश पहना कर रख लिया,

जो राहगीरों को रोटी करके खिला देती और अपनी मजूरी के पैसे ले लेती।

एक बार कुछ व्यापारी उस गाँव में आए। ठहरने के लिए जगह पूछने पर लोगों ने उस ब्राह्मणी का घर बता दिया। व्यापारियों ने वहाँ आकर ब्राह्मणी को आटा, मसाला आदि देकर रोटी करने के लिए कहा और खुद नहाने चले गए। स्नानादि करने के पश्चात् भोजन करने बैठे। भोजन बड़ा स्वादिष्ट बना था। व्यापारियों ने कहा—बुढ़िया माई! दाल तो खूब ही जायकेदार बनी है। बुढ़िया अपनी प्रशंसा सुनकर फूल उठी—बोली, जायका तो पूरा कहाँ बन सका है? जायका तो पूरा जब आता कि काचरियों को काटने के लिए छुरी मिली होती?

तो फिर कैसे काटा?

काटा क्या भाई! दाँतों से ही फाड़ना पड़ा।

छिः! छिः! तब तो हमें भ्रष्ट कर दिया—व्यापारी झल्ला उठे और लगे थाली को जमीन पर पटकने।

ब्राह्मणी चिल्लाई—अरे! यह तो अमुक डूम के घर से माग कर लाई हूँ कहीं उसके टुकड़े मत कर देना।

व्यापारियों का गुस्सा भड़क उठा—कैसी कमीनी है! आज तो खूब भ्रष्ट कर दिया। सच बोल तू किस जाति की है?

तब वह बोली—मेरा खून तो डूमका है लोगों ने मुझे

ब्राह्मणी के कपड़े पहना कर रसोई पानी करने के लिए यहाँ रख छोड़ा है।

ब्राह्मणी का वेश बना लिया तो क्या हुआ? तो यह निरा डूमपना तो नहीं गया व्यापारी घृणा से भौंहें तानकर छिः! छिः! करते चलते गए।

स्वामीजी ने बताया—जो व्यक्ति साधु का रूप बना कर भले ही ऊपर के कायिक कष्ट सहता रहे, पर अपनी असद् वृत्तियों को नहीं मिटाता है तो वह उस ब्राह्मणी जैसा ही है जिसका वेष बदलने पर भी स्वभाव नहीं बदल सका।

[भिक्षु दृष्टान्त ११४]

मूल के अपवित्र

सन्त असन्त की के चर्चा जिका मूल मिथ्याती।
गगा न्हाया कियां शुद्ध हुवै गाजीखा (मुल्ला खा) रा साथी ॥८९॥

एक ब्राह्मण अपनी पत्नी को लेकर परदेश गया। व्यापार मे उसने अच्छी लक्ष्मी कमाई। कुछ दिनों बाद ब्राह्मण का देहान्त होने से ब्राह्मणी किसी पठान के प्रेम मे फँस गई। उसके दो पुत्र भी हुए—गाजीखाँ और मुल्लाखाँ कई वर्षों बाद ब्राह्मणी अपना धन माल लेकर घर लौट आई। लोगों ने उसके पास धन देखा तो गुड़ के पीछे मक्खियों की तरह उसके पीछे-पीछे फिरने लगे। कोई उसे भुआ कहके पुकारता, कोई चाची, कोई दादी, और कोई मौसी कहके।

ब्राह्मणी ने विद्वान् पण्डितों को बुलाकर अपने पुत्रों का उपवीत (जनेऊ देने) संस्कार के लिए कहा। इसकी तैयारियाँ की गई, समूची जाति को भोज दिया गया। जनेऊ लेने के लिए माँ ने अपने पुत्रों को पुकारा—आओ बेटा! गाजीखाँ, मुल्लाखाँ! जनेऊ ले लो!

नाम सुनते ही ब्राह्मण चौंक पडे अरे यह क्या! ये मुसलमानी नाम क्यों! कहीं दाल में काला तो नहीं है? ब्राह्मणी के

पास आए और कटारी निकाल कर बोले—सच कह ये किसके लड़के है ? नहीं तो आज तेरी खर नहीं है। तुझे जान से मार डालेंगे ... .।

ब्राह्मणी ने घबराकर सब बात सच-सच कह डाली। ये अमुक पठान के लड़के है, उनके गुजर जाने के बाद उससे मेरा प्रेम हो गया और ये उसी के हैं।

छिः ! छिः ! कहकर के ब्राह्मण उठ खड़े हुए—पापिनी ! सबको भ्रष्ट कर दिया। अब तीर्थ-यात्रा करने जाना पड़ेगा तब कहीं शुद्धि होगी.........।

ब्राह्मणी ने दीन स्वर में कहा—अच्छा तो इन्हे भी ले जाओ ताकि ये भी तीर्थ-स्नान करके पवित्र हो जाएँ तो फिर जाति मे कोई अडंगा न रहे।

नहीं इनकी शुद्धि नहीं हो सकती—हमने तो सिर्फ तेरा अन्न खाया है। बाकी हम जन्मना शुद्ध हैं। ये तो मूलतः ही अशुद्ध हैं तीर्थ-स्थान से इनकी शुद्धि कैसे होगी ?

स्वामीजी ने दृष्टांत का हार्द बतलाते हुए कहा—जिनकी विचारधारा (सम्यक्त्व) शुद्ध होती है, चरित्र ठीक होता है, वे जन्मना शुद्ध है। भूल होने पर उन्हें प्रायश्चित देकर शुद्ध किया जा सकता है। किन्तु जो मिथ्या-दृष्टि होते है, चरित्र से हीन होते हैं, उनकी प्रायश्चित्त से शुद्धि कैसे की जा सकती है ? चूकि वे गाजीखाँ, मुल्लाखाँ की नाईं मूलतः अशुद्ध जो ठहरे...।

[भिक्षु दृष्टान्त ११५]

: ८२ :

मिलावट

धर्म पाप रो मेल मिलाया काम विगड्या सारो।
घी तम्बाकू करदी मेली ओ लाड़ो लखणा रो ॥६०॥

स्वामीजी ने कहा सासारिक क्षेत्र में धर्म-अधर्म, हिंसा-अहिंसा, और पुण्य-पाप दोनों का ही अलग-अलग महत्त्व है, किन्तु जो व्यक्ति धर्म, अहिंसा या पुण्य के लोभ में आकर अधर्म, हिंसा या पाप को उनके साथ मिलाकर चलाने की मूढ चेष्टा करता है वह दोनों से ही हाथ धो बैठता है। उसकी "इतो भ्रष्ट स्ततो भ्रष्ट" वाली गति हो जाती है। इसको स्पष्ट करने के लिए स्वामीजी ने उदाहरण दिया।

एक व्यापारी घी और तम्बाकू बेचा करता था। घी देश में खूब होता था। और तम्बाकू बाहर से आती इसलिए घी और

तम्बाकू समान भावों में बिकते। एक बार व्यापारी को माल लाने के लिए बाहर जाना पड़ा। दूकान पर उसने अपने पुत्र को बिठा दिया और दोनों के ही भाव ताव समझा दिए।

लड़का अपने आपको कुछ अधिक समझदार मानता था। उसने देखा कि एक ओर घी पड़ा है और एक ओर तम्बाकू। दोनों के ही बर्तन कुछ आधे २ रीते हैं। मन में सोचा जब कि दोनों के ही समान भाव हैं तो इन्हें अलग रखकर क्यों इतने बर्तन रोके जाएँ और क्यों इतनी जगह ? "शुभस्यशीघ्रम्" के अनुसार झट उसने तम्बाकू को घी के बर्तन में उडेलकर खूब अच्छी तरह हिला दी।

जब घी लेने वाले ग्राहक आए और उन्हें यह तम्बाकू मिला हुआ घी दिखाया तो पूछा—यह कैसा घी ?

लड़के ने अपनी समझदारी की बात कही। ग्राहक उसकी मूर्खता पर हँसकर चले गए।

तम्बाकू के ग्राहकों को भी जब इसी प्रकार घी मिली हुई तम्बाकू दिखाई तो वे भी इसका कारण जानकर उसकी विवेक-हीनता पर तरस खाकर चले गए।

शाम को पिता जब दूकान पर आया तो यह गड़बड़ घोटाला देखकर पुत्र से पूछा—यह क्या ? घी और तम्बाकू को मिलाया किसने ?

पुत्र—जब दोनों एक ही भाव के हैं—तब इन्हें अलग-अलग रखने में क्या लाभ ? यही सोच समझकर मैंने दोनों मिला

दिए, किन्तु कोई ग्राहक इसे नहीं ले गया उल्टा मुझे मूर्ख बताया गया।

पिता—मूर्ख है ही तू, समान भाव और समान आवश्यकता होने पर भी दोनों वस्तुएँ अलग-अलग ही काम की थी, मिल जाने पर घी भी बिगड़ गया और तम्बाकू भी, अब इसे कौन लेगा?

सेठ ने पुत्र की मूर्खता पर पछताते हुए दोनों को बाहर डलवाकर बर्तन साफ करवाए''' ।

स्वामीजी ने इसका मर्म बताया—

धर्म-अधर्म, हिंसा-अहिंसा और पुण्य-पाप की गृहस्थ-जीवन में आवश्यकता होने पर भी दोनों को मिलाकर घी तम्बाकू की तरह गड़बड़ मत करो, दोनों का मूल्यांकन पृथक्-पृथक् करो, दोनो का दृष्टिकोण भी पृथक्-पृथक् रक्खो' ' ।

[मतान्तर की चोपी]

: ८३ :

दृष्टान्त त्रयी

वेश्या मरी वच्या धन बकरा धर्म पाप है क्या में।
त्रिपदी की ज्यू तत्त्व भर्यो है तीनूं दृष्टान्ता में ॥९१॥

स्वामीजी के समग्र दर्शन का चिंतन अत्यन्त संक्षेप में किया जाए तो यही हो सकता है कि "धर्म का मूल त्याग, और उसका द्वार है—हृदय-परिवर्तन"।

स्वामीजी ने तत्त्व समझाने के लिए तीन दृष्टान्त (उदाहरण) दिए हैं जिन्हें सम्यक् रूप से समझने पर स्वतः उनकी श्रद्धा हृदयंगम हो जाती है—

(१) सेठ की दुकान पर साधु रात भर के लिए विश्राम कर रहे थे। रात को घोर अन्धकार मे सहसा किसी के पैरों की आहट पाकर मुनि जाग उठे, देखा तो दुकान से माल निकालने में चोर व्यस्त है। मुनि उनके निकट आए और परिचय पूछने

लगे—चोर एक बार सकपका गए किन्तु मुनि-वेष को अत्यन्त विश्वस्त समझ कर सच-सच कह दिया—हम चोरी करने के लिए आए हैं। मुनि ने वहीं अपना आसन जमाकर चोरों को उपदेश देना शुरू किया, समय की बात थी सो ऐसी लगी कि तीनों के हृदय बदल गए और जीवन भरके लिए चोरी को तिलाजलि दे दी।

प्रातःकाल सेठ ने यह दृश्य देखा तो मुनि के उपकार पर झूम उठा, उसका "परमेश्वर" धन जो बच गया था। इसमे दो बातें हुईं, हृदय-परिवर्तन के द्वारा चोरों ने अपना घृणित काम छोडकर जीवन उत्थान किया और सेठ का धन बच गया। पहला धर्म हुआ दूसरा उसका आनुषगिक फल, जिसकी कामना न मुनि को थी न चोरों को ।

(२) मुनि विहार कर रहे थे कि मार्ग मे कुछ हिंसक कसाई बकरों को लिए वध-भूमि की ओर जा रहे थे। मुनि को उन्हें समझाते देर नहीं लगी, कसाइयों को अहिंसा का उपदेश दिया गया। उनकी हिंसक भावनाऐं मिटी, अहिंसा और विश्व के प्रति प्रेम का उदय हुआ। वहीं पर उन्होने अपने इस हिंसक व्यापार का त्यागकर दिया। इसमें भी दो तथ्य सामने आए—कसाइयों का अहिंसा की ओर आना और बकरों का जीवन बच जाना। पहला धर्म हुआ दूसरा उसका आनुषंगिक फल, जिसके लिए न मुनि को यत्न करना पडा, न कसाइयों का आकर्षण भी था।

(३) रात काफी बीत चुकी थी, मुनि बैठे-बैठे स्वाध्याय

कर रहे थे, सामने से कुछ मन चले युवक निकले। मुनि ने उनसे परिचय पूछ लिया, युवक सहम कर रुक गए। बातचीत में जब उनके उधर जाने का रहस्य खुला तो मुनि ने चरित्रबल पर विशेष प्रकाश डाला, युवकों का मन अपने दुराचार के प्रति घृणा से भर गया और तत्काल पर स्त्री व वैश्यागमन की प्रतिज्ञा में बन्ध गए। इधर वह प्रेमिका जो अभी तक उनकी राह देख रही थी, चलती-चलती यहाँ पहुँच गई और उन्हें चलने का आग्रह करने लगी। युवकों ने स्पष्ट प्रतिकार करते हुए कहा कि तुम हमारी बहन हो, हम यह पाप अब नहीं कर सकते। चाहो तो तुम भी मुनि के निकट आत्म-निवेदन कर प्रतिज्ञा ले लो किन्तु वह अपने आग्रह पर अड़ी रही, धमकी देती हुई बोली—या तो चलो नहीं तो मैं तुम्हारे नाम पर कुए में गिर कर आत्म-हत्या करती हूँ। युवकों ने बहुत समझाया-बुझाया पर उसने एक न मानी, और अन्त में कुए में गिरकर आत्म-हत्या कर ही ली। यहाँ भी घटना के दो फलित होते हैं। युवकों का चारित्रिक उत्थान और उनकी प्रेमिका की आत्म-हत्या।...

पहला फल निश्चित धर्म है जिसकी प्रेरणा का मूल फल मुनि को और त्याग का फल युवकों को मिलता है उसका आनुषंगिक फल दूसरा अधर्म है पर उसकी जिम्मेदारी प्रेमिका के सिवाय और किसी पर नहीं जाती . ।

स्वामीजी का दृष्टिकोण है—पहले तीनों कृत्य चोरी न

: ८४ :

तराजू की चोटी

हुवै तराजू कै दो बाजू पलड़ा विचमें चोटी।
खोट हुया चोटी में करदै सारी बाता खोटी॥ ९२॥

गुरु की महिमा के बखान ग्रन्थों ने और सन्तों ने खूब किए हैं किन्तु स्वामीजी की दृष्टि में गुरु की महिमा के पहले गुरु की सतर्क कसौटी करने की आवश्यकता थी। उन्होंने कहा—तराजू की चोटी की तरह देव और धर्म के कांटे का बीच (चोटी) गुरु है। जिस प्रकार चोटी में कुछ कसर हो तो तोल की समूची व्यवस्था ही गड़बड़ हो जाती है वैसे ही देव और धर्म की व्याख्या करने वाले गुरु अगर प्रामाणिक न हो तो समूचा तत्त्व-दर्शन ही विपरीत हो जाता है और अन्ततः "ले डूबता है एक पापी नाव को मझधार में"।

[भिक्षु दृष्टान्त २९३]

: ८५ :

बराबर की जोड़ी

कहकर क्रोधी और लोलुपी करता माथा फोड़ी।
घस्यो श्रावकां ताम्बो आखिर मिली बराबर जोड़ी ॥९१॥

कुसलोजी और तिलोक जी नामके दो साधु थे जो एकबार स्वामीजी को मिल गए। चर्चा में निरुत्तर होकर खिसियाकर बोले—तुम तेरापन्थियों ने दान-दया उठादी है। मैं तुम्हें बदनाम करूँगा।

स्वामीजी उनकी मूर्खता पर मुस्कराए—कोई हर्ज नहीं!' मेरे विरोधी दो हजार व्यक्ति मुनि-वेष में गिने जाते है, पूरे है तो दो ज्यादा सही, अगर कम है तो पूरे हुए। दोनों स्वामीजी के पास से तो चुप होकर चले गए अब श्रावकों के पास स्वामीजी की निन्दा करने लगे। उनमें से एक वेले-वेले की तपस्या करता था। समय पा श्रावकों ने उससे कहा—तुम तो तपस्या करते हो और वे नहीं करते?

वह तो साला लोलुपी है, खाना-पीना छूटता नहीं तपस्या कैसे करे ?

जब उसे पता चला कि वह मुझे लोलुपी कहता है, तो बोला—उसकी तपस्या में धूल है, साला महा क्रोधी है।

श्रावकों ने उनकी कसौटी करली, यह बराबर की जोड़ी है वह लोलुपी कहता है वह क्रोधी !! ..

[भिक्षु दृष्टान्त ७५]

: ८६ :

कृतज्ञता

मोटा पर का गुण लेणे में कदे न घाटो घाल्यो।
साधा कै सहयोगे संजम सुखे सुखे मैं पाल्यो॥ ९४॥

गुण का संग्रह करना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है गुण और गुणी का मान करना। शिष्य गुरु के आश्रय से पूजा पाता है और गुरु शिष्य की पूजार्हता बढ़ाकर उसको मान देता है। स्वामीजी ने जिस शिष्य-समुदाय को अपने हाथों मे पाला पोसा। उसी समुदाय के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की, यह उनकी महानता का ही रूप था। अन्तिम समय में स्वामीजी ने कहा था—मैंने भारमलजी, हरनाथजी खेतसीजी इन साधुओ के सहयोग से समाधिपूर्ण जीवन व्यतीत किया।

वास्तव में वैसे सुविनीत और विवेकी शिष्यों को पाकर कौन गुरु प्रसन्न नहीं होता है और ऐसे महान् गुरु को पाकर कौन शिष्य धन्य नहीं होता है ?

[भिक्षु यशरसायन ढाल ५४]

: ८७ :

"तेरापन्थ की जन्म-कुण्डली"

कद ताई ओ पन्थ चालसी लोका बात चलाई ।
नियम निभासी पंथ चालसी भीखण साफ सुणाई ॥९५॥

किसीने स्वामीजी से पूछा—आपका यह पन्थ कब तक चलेगा ? स्वामीजी—जब तक साधु साध्वियाँ अपनी मर्यादा मे रहेंगे। चेला चेलीके भूखे नहीं बनेंगे। अपने लिए कोई मकान आदि नहीं बनवायेंगे। तब तक इस पंथ को कोई आच नहीं आएगी '।

प्रश्नकर्ता के सामने—आचार-निष्ठा के प्राण पर टिके हुए धर्म-सघ की कुशल क्षेम के बारे में अब कोई शंका नहीं रह गई थी।

[भिक्षु दृष्टान्त ३०७]

स्मृति के संदर्भ में

: ८८ :

नींव की ईंटे

ठंडी घाट ठाट स्यू लाकर कहै लै फत्ता खालै।
सवा मास रै सफल पारणै नही नाक सल घालै ॥९६॥

मुनि थिरपालजी और फतेहचन्दजी बडे ही निस्पृह, सरल और स्थित प्रज्ञ मुनि थे। अपने हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा उन्होंने स्वामीजी के प्रति समर्पण करदी थी। वे नींव के पत्थर थे, जो ख्याति से दूर रहकर मूक-साधना के द्वारा सघ को जीवन देते थे। एकबार आप कोटा (राजस्थान) गए। आपके चरित्र और वैराग्य की ख्याति सुनकर वहाँ के तत्कालीन नरेश ने दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की। आप नहीं चाहते थे कि नरेश उन परिस्थितियों मे दर्शन करने के लिए आए, फिर भी उनकी प्रबल इच्छा देखी तो आप वहाँ से विहार कर गए। और श्रावकों से कहते गए, श्री भीखणजी पधारे तब दर्शन करवाना।

वे ही मुनि विहार करते हुए वरलु (भोपाल गढ़) गए। मुनि फतेहचन्दजी ने सैंतीस दिन की तपस्या की। पारणा लाने को मुनि थिरपालजी (पिता) गए। किन्तु भिक्षा में बाजरे की बासी घाट के सिवाय और कुछ नहीं मिला।

फत्ता! यह ठंडी घाट है, इच्छा हो तो खाले—पिता मुनि थिरपालजी ने अलमस्ती से कहा, और पुत्र ने बिना नाक भौंह सिकोड़े समभाव से ठंडी घाट के द्वारा सैंतीस दिन की तपस्या का पारणा किया। इसीके फलस्वरूप मुनिश्री फतेहचन्दजी का स्वर्गवास भी हो गया। किन्तु उनकी अस्वाद एवं तपोवृत्ति "बिल मिव पन्नग भूए" और "जवणट्ठाए महामुणी" के आगम आदर्श को आज भी जीवित बना रही है।

भगवान् भी हारे

भक्तां सू भगवान् सदा ही चोड़ै धाड़ै हारै।
उठावण रा त्याग आपरै (तो) सोवण रा है म्हारै ॥९७॥

कहा जाता है कि वक्त और भक्त की वात स्वयं भगवान् भी नहीं टाल सकते। मुनिश्री खेतसीजी की जीवन-घटना से यह वात विल्कुल सत्य सिद्ध हो जाती है।

मुनिश्री खेतसीजी नाथद्वारा के भोपजी शाह के पुत्र थे। वचपन से ही वड़े नम्र और लज्जाशील थे। आपने दो विवाह किए, किन्तु दोनों ही स्त्रियों का देहान्त हो गया। सं० १८३८ की चैत्र शुक्ल १५ को तेतीस वर्ष की अवस्था में महामहिम भिक्षु स्वामी के चरणों में दीक्षित हुए। स्वामीजी दीक्षा देकर नाथद्वारा से कोठ्यारा पधारे और पीछे से आपके पिता का देहान्त हो गया।

स्वामीजी ने शिष्य के मन को परखने के लिए पूछा— भोंपाशाह चल वसे हैं तुम्हे दुःख तो नहीं हुआ ? दुःख किस वात का मेरा सौभाग्य है कि पहले वे पिता थे अव आप जैसे

पिता मिल गए हैं। मुझे पिता का वियोग देखना ही नहीं पड़ा—मुनिश्री खेतसीजी ने भक्ति भरे हृदय से कहा।

एकबार स्वामीजी को बार-बार लघु शंका होने के कारण मुनिश्री खेतसीजी को अधिक जागना पड़ा। दूसरे दिन प्रसंग वश यू ही मुनिश्री खेतसीजी ने कह दिया रात तो आपको देह-चिन्ता अधिक हुई।

स्वामीजी ने सोचा—रात को अधिक जागने के कारण सम्भवतः इसको कष्ट हुआ होगा अतः बोले—आज रातको तुम्हें जगाने का त्याग है।

मुनिश्री खेतसीजी स्वामीजी के इस आकस्मिक निर्णय पर कुछ देर अवाक् से रहे और फिर सहसा बोल पड़े—आपको जगाने का त्याग है तो मुझे सोने का भी त्याग है।

उनकी विलक्षण गुरु-भक्ति और विनीतता ने स्वामीजी के हृदय को जीत लिया। मुनिश्री खेतसीजी की सहज नम्रता, सरलता और भद्रता की त्रिवेणी आज भी "सतयुगी" के नाम से संघ के हृदय में प्रवाहित हो रही है।

: ६० :

पग बन्धन और जग बन्धन

जद साची वैराग भावना अन्तर दिल सूं ऊठै।
के जग बन्धन पग बन्धन भी रूपां की ज्यूं टूटै॥९८॥

मुनिश्री खेतसीजी के दो बहनें भी थीं कुशालाजी और रूपाजी, कुशालांजी ने पति को छोड़कर अपने होनहार पुत्र रायचन्दजी (तृतीयाचार्य) के साथ स्वामीजी के निकट भागवती दीक्षा स्वीकार की। रूपाजी उनसे पहले ही स्वामीजी के चरणों में आ चुकी थी। रूपाजी को दीक्षा की स्वीकृति प्राप्त करने मे बहुत कष्ट उठाना पड़ा। रूपाजी के जब अपने पति, पुत्र आदि पारिवारिक जनों के समक्ष विरक्ति की बात कही तो उन्होंने स्वीकृति नहीं देकर उल्टे एक काठ का खोड़ा (पैर फंसाने का बन्धन) बनाकर उसमें पैर डलवा दिया। बीस दिन के घोर परीक्षण के बाद इक्कीसवें दिन वह खोड़ा अपने आप टूक-टूक होकर खुल पड़ा····।

जिसने देखा सुना वे सबके सब इस अद्भुत घटना से चमत्कृत होकर नारी के अमित पौरुष के सामने झुक गए। पग-बन्धन छूटते ही जैसे जग-बन्धन भी छूट गया और परिवार की हर्षानुमति के साथ स्वामीजी के शिष्य-परिवार मे सम्मिलित हो गई। विक्रम सवत् १८५२ मे दीक्षित होकर वि० संवत् १८५७ में पंडित मरण प्राप्त किया।

(जयगुणी चरित्र ढाल ८ एव शासन-विलास)

: ६१ ·

अपनी चिन्ता कर

अन्त समय निज चिन्ता करणी परको सोच विसारी।
रूपाजी नहीं आड़ा आवै तू कर चिन्ता थारी ॥९९॥

स्वामीजी ने संवत् १८५५ का चातुर्मास पाली में किया। वहाँ की घटना है मुनिश्री खेतसीजी रोग-शय्या पर बेहोश पड़े थे। स्वामीजी आदि कुछ संत निकट बैठे-बैठे उन्हें आत्मा-लोचन, आराधना, संलेपना आदि कराने में तत्पर थे। सहसा जरा-सा होश आया और स्वामीजी के चरण स्पर्श करते हुए निवेदन किया—गुरुदेव! रूपांजी को कुछ पढ़ाई लिखाई कराना।

तत्क्षण स्वामीजी ने टोकते हुए कहा—तू तेरी चिन्ता कर। तुझे आगे जाना है समाधि और शान्ति से आत्म-चिन्तन में लग! अन्तिम समय में दूसरों में न उलझ कर व्यक्ति को अपने आप में उतरना चाहिए—स्वामीजी का यह संकेत हम सबके लिए प्रेरणा सूत्र है।

[भिक्षु दृष्टान्त २५३]

: ६२ :

तर्क और श्रद्धा

तर्कशील नै उचित तर्क स्यूं समझदार समझावै।
कच्चा हींगलू सूठां लागै (तो) फेल्हू क्यूं ल्यावै ॥१००॥

तर्क के साथ यदि श्रद्धा नहीं हो तो मानना चाहिए दौड़ने वाले के लिए कहीं विश्राम-स्थल नहीं है, तैरने वाले के लिए कहीं किनारा नहीं है। तर्क का विलय श्रद्धा में होने से जीवन में रस आता है, आनन्द मिलता है। स्वामीजी के सुयोग्य शिष्य थे मुनि वेणीरामजी। बगड़ी (सुधरी) के निवासी थे संवत् १८५४ में उनकी दीक्षा हुई। उनमें बाल-चापल्य था तो गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धा भी। बचपन से ही प्रतिभा की स्फुरणा अच्छी थी। स्वामीजी की प्रायः रचनायें इनके कण्ठस्थ थी। कहते हैं एक बार किसीने पूछा मोक्ष किस गुण-स्थान में मिलता है।

आपने उत्तर दिया—गुण-स्थान में मोक्ष नहीं होता, गुण-स्थान को छोड़ने पर होता है। इसीलिए जयाचार्य ने इन्हें "वेणीराम वजीर" के नाम से पुकारा है। पर्यटन का बड़ा शौक था। व्याख्यान और चर्चा की शैली विलक्षण थी।

बचपन की घटना है कि एक बार स्वामीजी से बोले—मैं हींगलू से अपने पात्र नहीं रंगूगा।

क्यों ?

मूर्छा लग सकती है।

तो किससे रंगेगा ?

केलू से।

केलू लाने जाएगा और वहाँ यदि दो प्रकार की केलू मिले एक कच्चे रंग और एक पक्के रंग की तो कौनसी लेना चाहेगा—स्वामीजी ने प्रश्न की सुई को घुमाया।

पक्के रंग की।

क्यो, उस पर भी मूर्छा आ सकती है।

मुनि वेणीरामजी की तर्क लड़खड़ा कर अब श्रद्धा का सहारा ढूढ़ने लगी मूर्छा तो भावों पर है हिंगलू से भी आ सकती है केलू से भी। और दोनों से नहीं आ सकती। ..अगर मन मे ममता नहीं है।

[भिक्षु दृष्टान्त १६०]

: ६३ :

चोर के घर पर

समझाया के समझै जिण में नहीं अक्कल रो छाटो।
नहीं पातरो द्यूं थानै देस्यूं मैंस्या नै वाटो॥१०१॥

मुनि वेणीरामजी विहार कर रहे थे। आगे चलने वाले साधुओं के पास से सामान छीन कर चोर ले गए। साधु बैठे मुनि वेणीरामजी की प्रतीक्षा कर रहे थे। मुनिश्री के आते ही साधुओं ने सारी घटना सुनाई, और तत्क्षण ही वे चल पड़े उसके खोज पकड कर।

चोर अपने बाल-बच्चो के बीच बैठा हुक्का पी रहा था। मुनिश्री वेणीरामजी सीधे उसके घर जाकर खड़े हुए और बोले—भाई! लाओ हमारे उपकरण व पुस्तकें जो छीन कर लाए हो।

कौन लाया है ?

तुम।

तुम्हें क्या पता ?

खोज कह रहे है।

अच्छा, साधु होकर खोजी भी हो ?

चोर के खोज क्या, गन्ध भी छिपी नहीं रह सकती और फिर साधुओ के पास कौन-सी सम्पत्ति है, जिसे तुम लेकर कहीं छिपाने की चेष्टा करोगे। मुनिश्री ने उसे प्रेम से समझाया बुझाया आखिर उसने एक बड़ पात्र और चित्रों के अलावा सब सामान वापिस दे दिया।

इनका तुम क्या करोगे ?

नहीं ये तो नहीं दू गा। यह पात्र तो मेरी भैंस को बाटा डालने के काम आएगा और इन चित्रों से मेरे बाल-बच्चे मनोरंजन करेंगे।

मुनिश्री के पास कोई जिद और जबरदस्ती की बात तो थी नहीं उसने जितना खुश होकर दिया उतना ही ले आए।

: ६४ :

तीन दिन में नौ जगह

तीन दिना में नव जाग्या फिर मन में नहीं कुम्हलावे ।
इसडा कष्ट सहिष्णु ही तो शासण शोभ चढावे ॥२०२॥

किसी मुक्त भोगी राहगीर ने कहा होगा—"पैंडो भलो न कोस को" "पंथ समानत्थि जरा" पद-यात्रा बड़ी कठिन चर्या है। वह भी जैन भिक्षुओं की और उसमें भी तेरापन्थी मुनियों की जिनके निमित्त कोई भी विश्राम स्थल नहीं। भिक्षा और जल का कोई निश्चित प्रबन्ध नहीं, अपवाद मार्ग की कोई छूट नहीं और फिर अपना भार अपने कन्धों पर लिए सैकड़ों हजारों मील जन-जीवन को जागृत करने त्याग सयम की अलख जगाए घूमना। सचमुच ही वह जीवन-यात्रा "दुरणुचरो मग्गो वीराणं" (वीर के मार्ग पर चलना कठिन है) को चरितार्थ कर रहा है।

मुनि वेणीरामजी अपने समय के प्रमुख पर्यटक थे। नए-नए क्षेत्रों में घूमकर उन्होंने स्वामीजी के अमृत को बाटा। मालवा क्षेत्र उन्हीं का चिर ऋणी है। एक बार विहार करते-करते रतलाम (मध्य भारत) में गए, वहाँ आपको आहार-पानी तो दूर किन्तु ठहरने के लिए स्थान भी नहीं मिला, तीन दिन में उन्हें आठ जगह से ठहरने के बाद निकाल दिया गया आखिर नौवीं जगह विश्राम मिला फिर भी वे लोगों की मूढ़ता पर दुःखी नहीं हुए; प्रत्युत वहीं डटकर वह आलोक बिखेरा जिसकी ज्योति धीरे-धीरे समूचे मालवे में फैल गई। और तभी यह मानना पड़ता है कि जैन भिक्षुओं की पदयात्रा की सफलता प्रदर्शन में नहीं बल्कि पथ-दर्शन में होती है।

[शासन-विलास]

: ६५ :

ऋषि हत्या का पाप

हाथो हाथ मिल्या फल कर्म विना भोग्या नहीं छूटै।
ऋषि हत्या को पाप साफ ही कोढ़ रूप में फूटै ॥१०३॥

मुनिश्री वेणीरामजी विहार करते-करते चासट्ट (जयपुर) गए। वहाँ बुखार आने से कुछ रुकना पड़ा, उपचार के लिए वहाँ के एक यति की औषधी आपने ली।

यति के मन में न जाने द्वेष और ईर्ष्या की क्या अग्नि भभक रही थी सो उसने दवाई मे जहर मिला दिया।

औषधी का असर होते ही शरीर नीला पड़ने लगा, आँखें गड़ गई और देखते-देखते स्वर्गवास हो गया"।

कहा जाता है कि कुछ ही दिनों बाद यति के शरीर में भयंकर कुष्ट फूट निकला। जानने वालों ने ऋषि-हत्या के घोर पातक का ही यह विपाक मानकर इस कुकृत्य की निन्दा की।

सचमुच ही नीति का यह सूत्र कि "उग्र पाप तीन दिन, तीन मास या तीन वर्ष मे अवश्य ही फूट पड़ता है", बहुत कुछ अनुभव के आधार पर टिका है।

साधुओं की पंचायत मत करो

श्रावक अन्त गृहस्थी हो चाहे कितनो मर्जी दानी।
साधां की पंचायत में पड़णै सूं आखिर हानि ॥१०४॥

स्वामीजी गुरु थे और कुशल शिक्षक भी, वे हर किसी घटना को माध्यम बनाकर बडी गम्भीर बातें कह देते थे। एक बार माढ़ा (मारवाड़) विराजे थे। वहाँ सिरियारी से श्री हेमराजजी दर्शन करने आए।

रात को चबूतरे के ऊपर तो स्वामीजी साधुओं के साथ ठहरे हुए थे। नीचे हेमराजजी सो रहे थे। साधुओं में चर्चा चल रही थी कि किस-किस को किधर विहार करना है। अनेक क्षेत्रों के नाम आए मगर सिरियारी का नाम नहीं आया। हेमजी ने स्वामीजी को याद दिलाते हुए तपाक् से कहा, गुरुदेव! सिरियारी को तो भूल ही गए! वहाँ किसको भेजेंगे? बिना पूछे ही पंचायत मे पड़ने की यह प्रवृत्ति स्वामीजी को अखरी उन्हें टोकते हुए बोले—हेमड़ा! तुमको किसने पूछा था? गृहस्थ को साधुओं की पंचायत में नहीं पडना चाहिए! एक क्षण रुके और फिर बोले—"साधुओ हमें भी ध्यान रखना चाहिए, हमारी पारस्परिक बातें गृहस्थों के बीच मे करने से कोई लाभ नहीं होता।" स्वामीजी की यह लघु शिक्षा आज हमारे लिए बोध-पाठ का काम देती है।

इति॰ बो॰ पृ॰—१०

: ६७ :

खुद को देखो !

कुंभकार ऊपर दै थापी भीतर रखै बुफारा।
अरे हेमड़ ! तू अवगण थारा देखै या म्हारा ॥१०५॥

संवत् १८५६ की बात है अस्वस्थता के कारण स्वामीजी को तेरह मास तक नाथद्वारा में रुकना पड़ा। मुनिश्री हेमराजजी जिनकी दीक्षा संवत् १८५३ में हुई तभी से तेरापन्थ की श्री वृद्धि का शुभारम्भ माना जाता है। जयाचार्य ने इन्हें अपने विद्या-गुरु के रूप में याद किया है। एक बार गोचरी गए। एक पात्र में चने और मूग की दाल मिलाकर ले आए। स्वामीजी ने पूछा—यह मिली हुई थी या तुमने मिलाई ?

मैंने मिलाई !

जहाँ रोगी की परिचर्या के लिए हमें विशेष ध्यान रखना चाहिए वहाँ मूल में भी असावधानी ?

यह ठीक नहीं है—स्वामीजी ने कुछ कड़े शब्दों में शिक्षा-सूत्र कहे। मुनिश्री हेमराजजी को अपनी भूल पर मूक पश्चाताप हुआ, वे अन्तर्वेदना से इतने पीड़ित हुए कि झोली रखकर जाकर सो गए।

आहार के समय सभी मुनि उपस्थित थे परन्तु हेम मुनि नहीं आए, स्वामीजी ने पूछा—हेमड़ा कहाँ है ?

वे तो सोए हुए हैं।

चुपके से स्वामीजी कोठरी के अन्दर गए, हेम मुनि के कान के पास में मुंह करके बोले—हेमड़ा ! लेटा-लेटा अपने अवगुण देखता है या मेरे ?

मुनि हेमराजजी झट से उठकर विनत स्वर में बोले—गुरुदेव ! मैं अपने को ही देखता हूँ ?

खुद को देखता है तब तो तेरा सुधार होगा—उठ ! चल आहार करें। एक ओर गुरु शिष्य का वात्सल्य विनय भरा यह मधुर सम्बन्ध, और दूसरी ओर यह कड़ी शिक्षा, जितनी विचित्र लगती है उतनी ही उपयोगी भी है।

सुधार का मूल मन्त्र यह है कि दृष्टि बाहर से सिमट कर अन्दर की ओर मुड़े। जब तक अपनी दुर्बलता और भूलों का निरीक्षण नहीं होता तब तक सुधार की पगडंडी नहीं मिल सकती। इसीलिए भगवान् महावीर का यह वाक्य मणि 'खुद को देखो' साधक के जीवन सूत्र में पिरोया रहता है !

[भिक्खु दृष्टान्त १६६]

: ९८ :

पक्का पाहुना

पक्को पाहुणो घर आयोड़ो कदे न खाली जावै।
रोटी देण रा त्याग है तो ही पाणी तो ले आवै ॥१०६॥

साधक लाभ-अलाभ में कभी खिन्न नहीं होता, जो मिलता है, उसीमें वह प्रसन्न चेत्ता और प्रसन्न दृष्टि रहता है। मुनिश्री हेमराजजी नाथद्वारा मे एक घर में गोचरी गए पूछा—वहन! शुद्ध आहार का योग है।

आप तेरापन्थी हैं?

हाँ।

तेरापन्थी को रोटी देने का मुझे त्याग है—वहन ने घूरकर कहा। खैर! रोटी का त्याग है धोवन पानी देने का तो त्याग नहीं है, वही वहरा दो!· वहन अपनी वात में वन्ध गई थी उसने पानी वहरा दिया।

हेम मुनि ने जव स्वामीजी के सामने यह आप वीती सुनाई तो सन्तों ने कहा—तव तो आप पक्के पाहुने निकले ··?

[भिक्षु दृष्टान्त २९२]

: ६६ :

श्रद्धा और विवेक

मन फंटावण का भी माई होवै कई तरीका।
जा पै ज्यारा गुण कर चहरा पड़ग्या बिल्कुल फीका ॥१०७॥

श्रद्धा व्यक्ति को स्व स्थान पर दृढ़ रखती है, और विवेक उसकी बाह्य आक्रमणों से रक्षा करता है। इसीलिए श्रद्धालु में दोनों आवश्यक है।

एक बार चन्द्रभाणजी स्वामीजी से अलग होकर घूमते-घूमते आमेट चले गए। वहाँ पर चंदू बाई नाम की श्राविका थी जो स्वामीजी के प्रति अनन्य श्रद्धा रखती थी। स्वामीजी से उसका मन फंटाने के लिए चन्द्रभाणजी उसके निकट आए और बोले— भीखणजी कहते थे चन्दू के पास धन तो है, परन्तु मक्खी चूस (सूमडी) है। दान का गुण नहीं है।

श्राविका उनके चक्कर में नहीं फसी, बोली—जारे पै जाख्या (पै जाख्या जूते को कहते है) तुम्हे इससे क्या मतलब है? वे ऐसा कहते ही नहीं, और यदि कह भी दिया तो क्या हुआ? गुरु हैं मेरे अवगुण मिटाने के लिए कह भी सकते है।

चुपचाप उल्टे पावों लौट आए। विवेक की दीवार से आक्रमण की गेंद टकरा कर और दूर जा पड़ी।

श्रद्धा का विचित्र समन्वय था। स्वामीजी के प्रत्येक दश पद्यों के पीछे एक पद्य बनाने की प्रतिज्ञा लेकर उन्होंने लगभग ३८०० पद्य बनाए। जिनमें बहुत से आज भी अपनी सरसता के कारण सैकड़ों कण्ठों पर नाच रहे हैं।

केलवा के शोभजी श्रावक नाथद्वारा में सरकारी मुलाजिम थे। एक बार किसी कारणवश उन्हें जेल की कड़ी सजा भुगतनी पड़ी। स्वामीजी ने जब यह अप्रिय घटना सुनी तो शीघ्र ही नाथद्वारा पहुँचे और कारागृह में उन्हें दर्शन देने के लिए पधारे। कुछ व्यक्तियों को यह कहते भी सुना—धर्मवीर भक्त को दर्शन देने आ रहे हैं, देखें अब कैसे छुडाकर ले जाते हैं?

उनकी कोठरी में जाकर जब स्वामीजी ने देखा तो—आँख मूंदे मस्त हुए गा रहे हैं "स्वामीजी रा दर्शन किस विध होय पुज्यजी रा दर्शन किस विध होय।"

स्वामीजी कुछ क्षण रुके, आखिर उनकी भाव भरी मस्ती को तोडते हुए बोले—शोभजी! तुम्हें दर्शन देने के लिये आ गये हैं।

स्वामीजी के शब्द सुन कर उन्होंने ज्यों ही सहसा दर्शन करने के लिए उठ कर आगे बढ़ने की चेष्टा की तो हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ अपने आप टूट कर गिर पड़ीं ...।

जेल के संरक्षकगण इस दैवी घटना से स्तम्भित रह गए, उनके ज्ञान-तन्तु स्पन्दित हो उठे..... क्या सच ही विश्वास और श्रद्धाबल के समक्ष लोह शृङ्खलाएं भी तुच्छ हैं?

: १०१ :

अच्छे बुरे की कसौटी

हट श्रद्धालु सुविवेकी नहीं झूठो मोह मचावै।
गुन गाहक है साचा कह कर विनयचन्द जस पावै ॥१०१॥

विनयचंदजी पटवा पाली के सुप्रतिष्ठित श्रावक थे उनका श्रद्धालु हृदय "अट्ठि मिञ्ज पेमाणु राग रत्ते" का (अस्थि और मज्जा भी धर्म में रंगी हुई) जीवंत प्रतीक था।

एक दिन कचहरी के बीच उनकी श्रद्धा का मजाक करते हुए—हाकिम ने पूछा—पटवाजी! इन सारे यति, संवेगी, स्थानकवासी, तेरापंथी और दिगम्बरी सम्प्रदाय के साधुओं में अच्छे कौन हैं और बुरे कौन हैं?

पटवाजी ने दो टूक उत्तर दिया—जिनमें गुण हैं वे अच्छे और जिनमें गुण नहीं हैं वे बुरे! सुनने वाले चकित से देखते रह गए।

[श्रावक दृष्टान्त ७]

: १०२ :

अपनी चीज

हुसी आपरी तो मिल जासी राखो हियो ठिकाणै ।
विजयचन्द थैली की घटना जाणण वाला जाणै ॥११०॥

विजयचंदजी पटवा दुकान से सीधे सामायक करने के लिए स्वामीजी के निकट आ गए। सामायक लेने के बाद याद आया कि अभी जो आदमी दो हजार रुपये की एक थैली दे गया था उसे दुकान के बाहर बरामदे में यों ही भूल आया हूँ। स्वामीजी से अपने मन की बात कही तो स्वामीजी ने कहा—सामायक में समता भाव रखना, शुद्ध सामायक के सामने थैली का क्या मूल्य है ?

पटवाजी का आत्म-विश्वास जगा—तू क्यों ममत्व करता है, यदि तेरी चीज है तो कहाँ जायेगी ! तेरी नहीं है तो रहने की नहीं· · ।

सामायक का कालमान पूरा होने ही वाला था कि मन में एक वार फिर लोभ की लहर उठ गई। इसका प्रायश्चित्त करने के लिए एक सामायक फिर कर ली और माला मे तल्लीन हो गए। दोनों सामायक पूरी होने पर स्वामीजी को वन्दना करके दुकान पर गये तो क्या देखते हैं कि एक बकरा उस थैली से सटकर बैठा हुआ है जिसके कारण वह ज्यों की त्यों पड़ी है; पटवाजी ने थैली को उठाते हुए सोचा, आत्म-विश्वास की कमी के कारण हृदय मे कमजोरी आ जाती है किन्तु वास्तव में जो चीज सच्ची कमाई की है, अपनी है, वह कहीं नहीं जाती।

[श्रावक दृष्टान्त]

: १०३ :

धीरज के मीठे फल

क्षमा देख बोल्या भिलवाड़ी हो थे साधु पक्का।
हुसी राव रघुनाथ जंवाई ज्यूं अब छक्कमछक्का ॥१११॥

सं० १८५३ स्वामीजी भीलवाड़ा पधारे। वहाँ कुछ विरोधियों ने वातावरण उग्र बना दिया, किंतु स्वामीजी के धैर्य और शान्ति से धीरे-धीरे जनता में श्रद्धा जगने लगी। भैरूंदास चण्डालिया नाम के भाई ने स्वामीजी से निवेदन किया—महाराज! आप धैर्यपूर्वक लोगों की गालियाँ सुनते हैं, अपमान सहते हैं, तो अंत में राव रघुनाथ के जंवाई की तरह आपकी अवश्य विजय होगी। लोगों ने राव रघुनाथ के विषय में जानना चाहा। भैरूंदासजी ने कहा :—

दिल्ली के बादशाह के सामने राव रघूनाथ अग्रवाल की बड़ी प्रतिष्ठा थी। राज्य मे बहुत प्रभाव था। एक बार कोई गरीब अग्रवाल अपने इकलौते प्यारे पुत्र को कपड़े-लत्ते पहना कर गोद में लिए जा रहा था कि अन्य जाति वालों ने ताना

कसा—क्या राव रघुनाथ की लड़की से अपने पुत्र की शादी करने चले हो ?

वात उसे चुभ गई, वोला—ऐसी क्या वात है वह भी अग्रवाल है मैं भी अग्रवाल हूं, हो सकती है।

अच्छा देखें कैसे होगी ? लोगों ने मजाक किया......।

अग्रवाल सीधा राव रघुनाथ के सामने कचहरी में आकर लड़के को आगे खड़ा करके वोला—ओ राव रघुनाथ ! मेरा लड़का तेरी लड़की सम्वन्ध करले।

राव के इशारे पर पहरेदारों ने गाली-गलौज कर वाहर ढकेल दिया। वाहर में आते ही लोगों ने पूछा—क्यों सम्वन्ध कर लिया ?

गर्वीले स्वर में उसने कहा—आज तो पहला ही दिन है कम से कम थुक्कम-थुक्का तो हुआ। दूसरे दिन वैसे ही पुत्र को कचहरी में ले जाकर जोर से आवाज लगाई—ओ राव रघुनाथ ! मेरा लड़का तेरी लड़की सम्वन्ध करले। सिपाहियों ने घूरकर कहा—कमवख्त ! कहाँ से आ गया ! और उसे धक्के देकर वाहर निकाल दिया। तमाशवीन लोगों ने फिर पूछा—क्यों सेठजी ! हो गया सम्वन्ध ? आज तो दूसरा ही दिन है भाई ! कल थुक्कम थुक्का हुआ आज धक्कम-धक्का हुआ।

उधर राव रघुनाथ जव अपने महलों में गए तो पत्नी ने इस दो दिन से होने वाली गड़वड़ी का कारण पूछा—राव रघुनाथ ने इस अग्रवाल की वात कही।

पत्नी—लड़का कैसा है ?

राव—लड़का तो अच्छा ही है, पर गरीब है।

पत्नी—गरीब है तो क्या ? धन तो हमारे पास बहुत है—लड़का अच्छा हो तो शादी सम्बन्ध कर लेना चाहिए, आखिर अपनी बिरादरी का ही है।

तीसरे दिन जब अग्रवाल ने आकर वैसे ही आवाज लगाई तो सेठानी ने उसे ऊपर बुलवा लिया। लड़के को पसन्द करके सम्बन्ध निश्चित कर लिया। उसे खूब धन देकर चार घोड़ों की बग्घी मे बिठला कर सिपाहियो के साथ विदा किया।

बाजार के मध्य से जब गुजरने लगा तो लोगो ने देखा कि सचमुच उसने राव रघुनाथ की पुत्री से अपने पुत्र का सम्बन्ध कर दिया है। थुक्कम थुक्का और धक्कम धक्का होनेवाले के आज छक्कम छक्का भी हो गया है। कुछ देर तक लोगों को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ किन्तु अन्त में मानना पडा कि वास्तव में अपमान की कडवी खाद पर पलने वाले धैर्य के वृक्ष के ये मीठे फल है…।

भैरूंदासजी ने अपना तात्पर्य स्पष्ट करते हुए कहा—महाराज ! वैसे ही हमे दृढ विश्वास है कि आज आप पर गालियाँ और पत्थर की बौछार करने वाले कल भगवान् मान कर आपके चरणो मे झुकेंगे।

: १०४ :

क्या खूब चेला मिला

तेरापन्थ्या स्यूं की चर्चा शेख्यां घणी वधारै।
नहीं गुरु की खबर मनैं पण म्हारै कर्म है बारै ॥११२॥

सं० १८६४ में देवगढ़ मे आसकरणजी का शिष्य स्वामीजी के श्रावक चतरोजी के पास आकर बोला—चतरोजी मुझसे चर्चा पूछो।

चतरोजी—तुम से क्या चर्चा करनी है ?

नहीं कुछ तो करो।

चतरोजी—तुम्हारे कर्म कितने है ?

बारह !

कौन कौन से ?

पूरे नाम तो मुझे नहीं आते !

चेला आसकरणजी के पास आया और शेखी बघारते हुए बोला—आज मैंने भीखणजी के श्रावक के साथ चर्चा की है!

गुरु—क्या?

उन्होंने पूछा—तुम्हारे कर्म कितने है—तो मैंने कहा बारह है।

गुरु—मूर्ख! आठ कर्म ही कटने मुश्किल हो रहे है; जा कहकर आ कि मेरे कर्म आठ ही है।

चेले ने वापिस आकर कहा—मेरे कर्म आठ ही हैं।

चतरोजी—तुम्हारे गुरु के कितने हैं?

चेला सकपका कर बोला—भाई! यह तो मुझे मालूम नहीं!

चतरोजी मुस्करा उठे—क्या खूब चेला मिला है।

[श्रावक दृष्टान्त ११]

: १०५ :

बड़ा कौन ?

विरला होवै निर अभिमानी जो गल्ती स्वीकारै।
कह्यो जीव जिनचन्द सूरी आश्रव नै चोडे धाडै॥११३॥

विद्वान् वह है जो अपनी भूल को समझे, और महान् वह है जो भूल को समझ कर स्वीकार करे। यह साधना जितनी कठिन है उतनी उच्च भी है।

लद्दोती (मारवाड़) में खरतर गच्छ के श्री पूज्य जिनचन्द्र सूरी का प्रवचन हो रहा था, श्रोताओं में स्वामीजी के एक तत्त्वज्ञ श्रावक चैनजी भी थे। श्री पूज्यजी ने नव तत्त्व का विश्लेषण करते-करते आश्रव को अजीव कह दिया।

चैनजी ने गलती को पकड़ते हुए कहा—आश्रव तो जीव है।

श्री पूज्यजी और चैनजी में कुछ देर तक तनातनी होती रही। व्याख्यान समाप्त होने के बाद श्री पूज्यजी ने बड़े-बड़े सैद्धान्तिक और चर्चावादी यतियों को बुलाया और इसका सैद्धान्तिक आधार पर निर्णय देने के लिए कहा—आगम देखने के बाद सभी ने कहा—आश्रव जीव ही है।

तत्क्षण चैनजी को बुलाकर श्री पूज्यजी ने क्षमायाचना की—मैंने आश्रव को अजीव कहा था और तुमने जीव सो तुम सच्चे और मैं झूठा ¨।

मैं असत्य का "मिच्छामि दुक्कडं" लेता हूँ।

चैनजी उठने लगे तो पूज्यजी ने कहा—यह तो मैंने सिर्फ औपचारिक रूप से कहा है, क्षमायाचना तो व्याख्यान में करूँगा। दूसरे दिन व्याख्यान में संघ के सामने वही बात दोहराते हुए कहा—चैनजी सच्चे और मैं झूठा ¨।

अपने आपको लघु मानने पर श्रावकों के समक्ष उनकी महानता और भी चमक उठी…।

[श्रावक दृष्टान्त १५]

: १०६ :

अग्नि परीक्षा

जन्ती में राख्या चेला नै वहै न आगै वेलो।
तनै खूचगै भूठै को मी करणो पड़ती तेलो ॥१९४॥

स्वामीजी के एक हाथ मे मृदुल वात्सल्य था तो दूसरे हाथ में कठोर अनुशासन। "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि"—उनमें चरितार्थ होता था। एकबार अपने प्रिय शिष्य भारीमालजी से कहा—तुम्हारे में यदि कोई दोष (खूचणा) निकालेगा तो प्रत्येक दोष के प्रायश्चित रूप मे तुम्हें एक तेला (तीन दिन का उपवास) करना होगा।

गुरु देव! सच्चा निकाले तो ठीक, यदि कोई द्वेषवश झूठमूठ ही कहदे तो? समझना पूर्वकर्म उदय में आए हैं, किन्तु तेला तो करना ही होगा . .....।

विना किन्तु परन्तु किए "तहत" कहकर उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। जीवन के कंटकिल पथ पर अप्रमत्त विहार करते हुए वे इस अग्नि-परीक्षा में पूर्ण उत्तीर्ण हुए। कुल जीवन मे एक तेला करना पड़ा वह भी मिथ्या आरोप के कारण।

[भिक्षु दृष्टान्त १८१]

जिसको चाह नहीं

कांई कमी रहै उणरै जो मुनि रहै फक्कड़ दावै।
निर्लोभीपन देख गूजरी सब पड़ता बहरावै ॥११५॥

कहते है कि लक्ष्मी ने अपने स्वयंम्बर में यह प्रण लिया था कि—"मैं उसी को अपनी वरमाला पहनाऊँगी जिसको मेरी चाह नहीं"। लक्ष्मी का ही नहीं संसार का नियम है जिसको चाह नहीं होती उसी के पास वस्तु आती है। जो अपने भाग्य पर भरोसा रखकर प्रामाणिक रहता है, वह कभी निराश नहीं होता।

एक बार भारीमालजी स्वामी माधोपुर पधारे। वहाँ गूजरी नाम की बहन आपके पास आकर कहने लगी—मैंने आपके आचार्य भीखणजी को आगमों की कई प्रतिया दी थी सो वे कहाँ है? मेरी मुझे दे दीजिए। आचार्य भारीमालजी ने तत्क्षण वे पुस्तकें मगवाई और उनकी तेरह प्रतिया निकाल कर रख दी।

गूजरी बाई तो विचारो में खो गई—"इनकी इतनी प्रामाणिकता है, इतने सच्चे हैं ये"!! सविनय निवेदन करती हुई बोली—"महाराज! बस परीक्षा हो गई। अब इनको सदा के लिए आपको बहराती (देती) हूँ!"

"जिसे किसी वस्तु की चाह नहीं होती, दुनियाँ उसे देना चाहती है।"

: १०८ :

भय विनु होइ न प्रीति

राजा हुवै कान रा काचा ऊंडी नहीं विचारै।
गुरु नै बारह काढ्या राणो बहकाया लोका रै॥११६॥
भूल्या रात प्रात घर आया भूल्योड़ो नहीं बाजै।
कटु परिणाम भोग राणोजी जाकी भक्ति साझै॥११७॥

मनुष्य गलती करते समय गलती को पहचानता भी नहीं है, किन्तु जब उसका भयंकर परिणाम सामने आता है तभी वह स्वयं उस पर पछताकर उसे सुधारने की चेष्टा करता है, ठोकर खाकर संभलता है, इसीलिए कहा जाता है
"भय विनु होइ न प्रीति"।

आचार्य श्री भारमलजी संवत् १८७५ के जेठ महीने में उदयपुर पधारे, वहाँ उनकी बढ़ती हुई धर्म-प्रभावना को देखकर सुहृदय व्यक्ति जहाँ प्रसन्न हो रहे थे वहाँ कुछ दुहृदय अन्दर ही अन्दर जलकर गुप्त षडयंत्र रचने में सक्रिय थे। महाराणा भीमसिंह जी के पास जाकर उन्हें बरगलाया—नगर मे कुछ ऐसे साधु आए हुए है जिन्होंने वर्षा को रोक रखा है। अत्यधिक गर्मी पड़ने से शहर मे हैजे की सम्भावना हो रही है। राणाजी ने सहसा आदेश दे दिया—"ऐसे साधु-संन्यासियों को शहर से निकाल दो" विरोधियों की तो बन आई, आदेश प्राप्त होते ही भारीमालजी स्वामी ने वहाँ से राजनगर की ओर बिहार कर दिया ..

पीछे नगर मे हैजे का प्रकोप बढा। महाराणा के दामाद तो इसके शिकार होगए और राजकुमार बीमार। आचार्यवर को नगर से निकाल ने पर यूंही जनता क्षुब्ध थी फिर इन घटनाओं ने उसके क्षोभ को और भी तीव्रता के साथ उभाड़ दिया। केशरजी भडारी ने जो कि राणीजी के कामदार थे और आचार्यवर के प्रति अनन्य श्रद्धाशील भी, राणाजी से कहा—आपको यह क्या बुरी सूझी है ? ऐसे त्यागी साधुओं को निरर्थक इतना कष्ट और अपमान ! समूचे शहर मे विक्षोभ की लपटें उछल रहीं हैं, जवाई चल बसे है, राजकुमार किनारे लग रहे है, और फिर भी जहाँ तक मैंनें सुना है—उन साधुओं को देश से निकालने की हरकतें चल रहीं है।

राणाजी ने विरोधियों द्वारा फैलाए गए विपले भ्रम के विषय में कहा तो भंडारीजी ने सभी परिस्थितियाँ स्पष्ट की।

राणा—केसरा ! अब क्या हो सकता है मैं तो धोखा खा गया !! उन्हें बुलाओ !

भंडारीजी—वे कोई नौकर थोडे ही है जो बुलाने पर आ हीं जाए ? राणाजी ने तत्काल अपने हाथ का एक रुक्का लिखकर हलकारे के साथ राजनगर भेजा।

इधर मेवाड़ के तेरापंथी श्रावक राजनगर में एकत्र हो गए थे। सभी ने यह निश्चय कर लिया कि आचार्यवर के साथ हमें भी देश-त्याग करना है। सिर्फ महाराणा के आदेश की प्रतीक्षा थी। जब हलकारा पत्र लेकर राजनगर पहुँचा तो जोशीले खून ने कहा—"पत्र फाड़कर राजसमन्द में फेंक दो और चल पड़ो आचार्य श्री के पीछे" ? किन्तु अनुभवी विचारकों के आग्रह पर पत्र खोलकर पढ़ा गया तो यह निकला—

॥श्री एकलिंग जी॥

श्री वाणनाथजी श्री नाथजी

स्वस्ति श्री साध श्री भारमलजी तेरे पंथी साधथी राणा भीमसिंह री विनती मालम हुवैः कृपा करे अठै पधारेगा की दुष्ट वै दुष्टाणो कीदो जी सामुं न्ही देषेगा मा सामुं वा नगर मैं प्रजा है ज्यारी दया कर जेज नहीं करैगा संवत् १८७५ वर्षे आषाढ़ वीद तीज शुक्रे... ...

लोगों का जोश नवीन उल्लास में बदल गया। प्रयाण समारोह अब धर्म परिपद् बन गई। जनता ने एक स्वर से निवेदन किया अब आपको कृपा करके उदयपुर पधारना चाहिए।

आचार्यवर ने धीर, गंभीर किन्तु निस्पृह स्वर में कहा— कौन अब बार-बार पहारों पत्थरों से पैर घिसता फिरै (कुण भाटा घूदतो फिरै) मेरे क्या राणाजी से लेना देना है यों कह-कर नहीं पधारे और वहाँ से विहार कर आपने पुर चातुर्मास किया।

: १०६ :

राज्य की धौंस

साचो श्रमण सदा दुम्मण पर भी समता सरसावै।
धोंस जमाकर राणोजी झट होश ठिकाणै ल्यावै ॥११८॥

राणाजी के पत्र के बाद भी जब आचार्य भारीमालजी स्वामी का उदयपुर आगमन नहीं हुआ तो शंका प्रतिशंकाओं में भूलकर महाराणा का हृदय आचार्यप्रवर को बुलाने के लिए और भी आतुर हो उठा। अपनी इस भयंकर भूल पर उनकी अन्तर आत्मा बहुत पछताने लगी। इसीलिए फिर दूसरा पत्र लिखकर हल्कारे के साथ भेजा।

॥ श्री एक लिंगजी ॥

श्री वाणनाथजी श्रीनाथजी

स्वस्ति श्री तेरापन्थी साध श्री भारमलजी सूं म्हारी डंडोत वंचै ? अप्रंच अठै पदारसी जमाषात्र सुं आगे ही रुको दियो हो सो वेगा पदारेगा वैगा आवैगा श्री जी रो राज हैसो सारां को सीर है जीं थी सन्देह काई वी न्ही लावोगा। संवत् १८७६ वर्षे पोष वदी ११

॥ इति सम्पूर्णम् ॥

जनता के अत्याग्रह पर आचार्यवर ने अपने मुख्य शिष्य रायचन्द्रजी स्वामी, हेमराजजी स्वामी आदि कई मुनियों को उदयपुर भेजा। सन्तों का आगमन सुनकर राणाजी ने सतोष की सास ली।

एक वार राणाजी ने भंडारी से पूछा—क्यों केसरा! सतों के कोई कष्ट तो नहीं है?

भंडारीजी—यों तो सतों को क्या कष्ट है? किन्तु विरोधियों की दुश्चेष्टाएँ अभी तक चालू है—रात्रिकालीन व्याख्यान मे विघ्न डालने की हरकतें की जाती है।

राणाजी—अभी तक उन कुत्तों को सद्बुद्धि नहीं आई? खैर मैं समझ लूगा। राणाजी के सकेत पर गुप्तचरों ने एक व्यक्ति को व्याख्यान-सभा मे राख की गठरी फैंकते हुए रगे हाथों पकड़ कर उपस्थित किया।

राणाजी ने आखों में आग वरसाते हुए कहा—इस दुष्ट को तोप के मुंह पर उड़ा दो।

नगर मे यह खवर विजली की तरह फैल गई और भयकर हलचल पैदा हो गई, भंडारीजी ने राणाजी से निवेदन किया—सन्तों का ध्यान है ऐसी घटना से कुछ अच्छे परिणाम नहीं आएंगे।

राणाजी ने हसते हुए कहा—सन्तों से अर्ज कर देना, राणा भीमसिंह ने तो अपनी जिन्दगी मे कभी एक खरगोश का भी शिकार नहीं किया। सो मनुष्य तो मारना बहुत बड़ी वात

है किन्तु दुष्टों को समझाने के लिए राज्य की धौंस जमानी ही पड़ती है।

राणाजी ने अपराधी को यह कहते हुए कि—संत नहीं चाहते हैं, इसलिए आज तुझे छोड़ता हूँ फिर कभी ऐसी घटना हुई तो एकलिंगजी की शपथ खाकर कहता हूँ कि तुझे जिंदा नहीं छोड़ूगा यों कहकर मुक्त कर दिया।

इसी सदर्भ में यह उक्ति सही जान पड़ती है कि "शमोहि भूषणं यतिनाम् न भूपतिनाम्" क्षमा साधक का भूषण है पर शासक का नहीं।

: ११० :

सादगी का आदर्श

झूठे आडम्बर में फँस कर करै मूर्ख वर्बादी।
जोधाशा लड़क्या की शादी करता सीधी सादी ॥११९॥

व्यक्ति अपनी दुर्बलता को जमाने और परम्परा की ओट मे छिपाकर कभी-कभी आश्वस्त होने का ढोंग कर लेता है, किन्तु वास्तव मे तो वह अपनी आत्मबल की हीनता को ही नग्न रूप में प्रस्तुत करता है। जिनमे आत्म-विश्वास की प्रबलता होती है, वे रूढ़ियों को तोडकर भी समाज के बीच अपना ससम्मान आदर्श उपस्थित कर सकते है।

बावलास (मेवाड) के श्रावक थे जोधाशाह। आर्थिक स्थिति बडी दयनीय थी सात पुत्रिया थीं। सामाजिक रूढियों के अनुसार बेटीवाले को दहेज भी देना पड़ता और जीमनवार भी। जोधाशाह पुत्रियो का विवाह करने के पहले ही स्पष्ट कर देते कि मेरे पास पुत्री है एक नारियल थाली, और लोटा, तैयार है यदि पसन्द है तो विवाह कर लीजिए। सामने वाले

सम्बन्धी कहते आप हमारे से रुपैया लेकर एक भोज दे दीजिए। इस पर जोधाशाह का उत्तर होता—"मैं क्यों तो आधै को न्योतू और क्यों दो जिमाऊ" झूठा दिखावा करने से क्या मतलब ?

उन्होंने इसी आदर्श के साथ अच्छे-अच्छे स्थानों पर सातों पुत्रियों की शादी की। उदयपुर के कई घर उन्हीं की पुत्रियों के समझाए हुए हैं।

: १११ :

सेठ और चमार

वोही बड़ो जिको मोकै पर मन मुटाव नें छोड़ै।
ई रा म्हामै म्हारा ईं मैं देखो लक्खण चोड़ै ॥ १२० ॥

बावलास में जोधाशाह श्रद्धालु और विवेकी श्रावकों मे माने जाते थे। वहीं पर एक चमार भी श्रावक था। किसी कारण से इन दोनों मे परस्पर खटपट हो गई और हुई भी इतनी कि एक दूसरे को देख मुंह फेर लेते, दूर से ही निकल जाते।

बावलास में चमार श्रावक को समाचार मिला कि मुनि श्री हेमराजजी आ रहे है और वह मुनि श्री हेमराजजी की अगवानी करने चल पड़ा। तभी उसे ध्यान आया कि संभवतः जोधाशाह को इसकी सूचना नहीं मिली है।

चमार के चरण सेठ के घर की ओर मुड़े और एक क्षण रुक गए मैं तो उससे बोलता भी नहीं हूँ, और तत्क्षण अंतर विवेक ने जगाया—यह तो साधर्मिकता का संबन्ध है, सांसारिक सम्बन्धों की कटुता यहाँ क्यों बाधक बने—यों सोच कर जोधाशाह को इसकी सूचना देकर वह मुनि श्री के सामने चला गया।

मुनि श्री हेमराजजी नगर में पधार गए। व्याख्यान के बीच जोधाशाह उठे और आज की इस घटना का उल्लेख करते हुए गद्-गद् होकर बोले—'आपके आने का समाचार पाकर वह दौड़कर मुझे कहने आया यदि ये समाचार मुझे मिले होते तो बहुत संभव है मैं नहीं कहला सकता। मैं सेठ होकर भी ऐसा डसीला हूँ कि इस चमार से भी गया बीता हूँ, और यह चमार होकर भी सेठ से बड़ा है। इसका हृदय कितना सरल है, कितना महान् है।

सभी ने एक स्वर से स्वीकार किया—कि बड़ा वही है जिसके हृदय में गाठ नहीं।

: ११२ :

पत्नी को प्रबोध

समझदार नर दिल परिवर्तन कर कर बात जचावै।
खोटै रस्तै नही घालू इम पत्नी नैं समझावै॥ १२१॥

बहनों की रग-बिरंगी टोलिया जब दि ढ़ाडा गाती हुई गुरु-दर्शन के लिए आती हैं तो अनायास ही श्रावक महेशदासजी की याद आ जाती है।

महेशदासजी किसनगढ के थे और पहले इतने कट्टर विरोधी थे कि जब आचार्य श्री भारीमालजी स० १८६६ मे किसनगढ पधारे तो अन्य सम्प्रदाय के साधुओं के साथ चर्चा करना निश्चित हुआ, उसमे महेशदासजी ने एक यति को पाच रुपये देकर उसमें शोरगुल करवा कर चर्चा भग करवा दी। बाद मे मुनि श्री हेमराजजी ने वहाँ चातुर्मास किया। चातुर्मास की आदि में उग्र विरोध का सामना करना पडा, सम्वत्सरी का एक भी पौषध नहीं हुआ, किंतु उनकी दृढ़ निष्ठा और अविरल लगन थी कि दीपावली के पाँच पौषध हुए, वहाँ समझने वालों में से एक थे महेशदासजी।

महेशदासजी की पत्नी भी बड़ी कट्टर थी, किंतु उनके विवेकी मानस ने धार्मिक मामले में पत्नी पर कोई दवाव नहीं डाल कर सिर्फ तत्त्व समझा कर हृदय-परिवर्तन करने का प्रयत्न किया। पत्नी को समझाने के लिए उन्होंने एक अत्यन्त सरस और सुन्दर रचना बनाई जिसके दो पद्य यों हैं—

थानें खोटा मारग घालूं नहीं म्हारी राखो अंतरंग माही प्रतीत।
लिया व्रत चोखा पालज्यो थे तो जास्यो जमारो जीत॥
आपा नाता आगै अनन्ता कर्या वले भोगव्या अनन्ती वार भोग।
पुन्य तणा सजोग थी अबकै मिलियो एहवो संजोग॥
वै गुरु म्हारा ? थे करल्यो नी थाहरा।

पत्नी उनके तर्क-पूर्ण वचनों एवं आदर्शों को स्वीकार करके सच्ची जीवन संगिनी बनी।

: ११३ :

विश्वास बड़ा या मुहूर्त

चित्त प्रसन्नता रो ही मोहरत सारा श्रेष्ठ बतावै।
पाट नखेद नींवं नै बैठ्या गहरा मंड जमावै॥१२२॥

सफलता का सब से पहला और सब से बड़ा सूत्र पूछा जाए तो उत्तर होगा आत्म-विश्वास। आत्म-विश्वास की कमी ही सब से बड़ा अपशकुन है और उसकी दृढ़ता सब से अच्छा मुहूर्त।

संवत् १८७८ की माघ कृष्णा ८ को आचार्य श्री भारीमालजी का स्वर्गवास राजनगर मे हो गया। दूसरे दिन तृतीयाचार्य का पदारोहण-समारोह होनेवाला था। एक मेवाड़ी मुनि आए और आचार्यवर से निवेदन करते हुए बोले—अन्नदाता! आज तो नखेद तिथि है। माघ वदी ६ शुभ कार्य के लिए निपिद्ध तिथि मानी जाती है।

दृढ़ सकल्पी रायचंदजी स्वामी ने वड़ी अलमस्ती से कहा—अपने तो न-खेद (दुःख नहीं) ही रहेगा और उसी दिन आपका आचार्यपद समारोह हो गया।

आचार्य श्री रायचन्दजी स्वामी का शासनकाल तेरापंथ का स्वर्णयुग माना जा सकता है। तीस वर्ष के शासनकाल में आपने चतुर्मुखी समृद्धि की सच ही आत्म-विश्वास की तेजस्विता के सामने अपशकुन या अप मुहूर्त्त का प्रभाव स्वतः ही भस्म हो जाता है।

: ११४ :

अपने प्रति सच्चे

आहार छोड़कर चढ्या भींत पर सूरज नहीं आथमज्या।
पाप भीरु रै चरणां में ढूंपी म्यू ढूंपी नम ज्या ॥१२३॥

हजार भाषण व प्रदर्शन से वह श्रद्धा नहीं मिलती जो त्याग और तप के प्रति स्वतः उद्भूत हो जाती है। संयम-निष्ठा का जीवित रूप देखकर अपने आप जन-श्रद्धा उमड़ पड़ती है।

आचार्य प्रवर रायचन्दजी स्वामी एक बार मांढ़ा (मारवाड़) पधारे। शाम के समय आकाश की छाती पर काली घटाएं छाई हुई थीं। संशय हो रहा था कि सूर्यास्त हुआ या नहीं? साधु आहार कर रहे थे अतः आचार्य वर स्वयं दीवाल पर चढ़कर देखने लगे कि सूर्य कितनी ऊंचाई पर है?

पड़ोसवालों को आचार्यश्री को दीवाल पर चढ़ा देख आश्चर्य हुआ और संशय भी—महाराज! आप ऊपर किस लिए?

मैं सूर्य देख रहा हूँ।

क्यों?

साधु आहार कर रहे है।

अगर सूर्यास्त हो गया तो?

तो सब आहार का त्याग कर परठ देते।

जिज्ञासु ने अनुभव के काटे पर इस बात को तोला—"इन्हें कौन यहाँ देखनेवाला था और कौन कहनेवाला था कि सूर्यास्त हुआ या नहीं? किन्तु ये कितने पाप-भीरू और नियम-निष्ठ है, अपने आपके प्रति कितने सच्चे है ये। वास्तव मे आत्म-साक्षी के चक्कों के सहारे ही धर्म का रथ चल सकता है। आचार्य श्री की त्याग-निष्ठा के इतने से प्रकाश में वह समूचा घर ज्ञान और श्रद्धा से आलोकित हो उठा। उसी परिवार की आगे जाकर तेरापन्थ-शासन में अच्छी-अच्छी कई दीक्षाएं हुई।

: ११५ :

अनुशासन की कारवाई

है आज्ञा को सग पण गण में इण स्यू मारग चालै।
बिन आज्ञा इक सुई जाच्या बाहर तुरत निकालै॥१२४॥

संघीय जीवन में अनुशासन का सर्वोपरी स्थान है। अनुशासन जब शिथिल होता है तो संगठन के पैर लड़खड़ा उठते हैं और उसे विघटित होते देर नहीं लगती। तेरापन्थ में अनुशासन-हीनता की छोटी से छोटी घटना को भी बांध की दरार के समान मानकर उसे तत्क्षण मिटाने की चेष्टा होती है।

एक बार एक मुनि बिना आचार्य श्री की आज्ञा लिए सीने के लिए सुई ले आए। आचार्य श्री रायचंदजी स्वामी ने कहा—तुमने बिना आज्ञा सूई कैसे ली?

इस छोटी-सी बात के लिए क्या पूछना है?—उसने लापरवाही से उत्तर दिया। आचार्यवर ने तुरन्त अनुशासन की कारवाई करते हुए उस मुनि को संघ से अलग कर दिया। साप के बच्चे की तरह अनुशासन-भंग को छोटे-मोटे के नाम से नहीं नाप कर उसके विषैले परिणाम देखे जाते हैं।

थली के तीन 'सकार'

कुशल कृषक उर्वर भूमि में बीज बोवणा चावै।
सचाई, सादगी, संगठन देख थली में आवै ॥ १२५ ॥

एक बार बीदासर के शोभाचन्दजी बेंगानी पाली गए, वहाँ पर आचार्य श्री रायचन्दजी स्वामी के दर्शन किए और थली में पधारने का निवेदन किया। स्मरण रखना चाहिए कि तब तक थली प्रदेश तेरापन्थ का प्रचार क्षेत्र नहीं था।

कुछ समय बाद आचार्य श्री बोराबड पधारे और वहाँ से कुछ मुनियों को थली के विषय में अधिक निकट से जानकारी प्राप्त करने के लिए थली में भेजा। मुनिगण कुछ क्षेत्रों में विचर कर आचार्य श्री की सेवामें उपस्थित हो जानकारी देते हुए बोले—थली अच्छा क्षेत्र है, धार्मिक उर्वरता भी लगती है और तीन बातें विशेष उल्लेखनीय हैं—सचाई, सादगी और संगठन।

थली के तीन सकार से आकृष्ट हो तृतीयाचार्य थली में पधारे और संवत् १८८७ का पहला चातुर्मास बीदासर किया। इसी वर्ष जयाचार्य ने चूरू और स्वरूपचन्दजी स्वामी ने रीणी (तारानगर) में चातुर्मास किए। तब से अब तक थली के जन-जीवन में तीन सकारों की व्याप्ति रही उन्नति की ओर समृद्धि की ओर इसके चरण बढते ही रहे।

: ११७ :

श्रद्धा का चमत्कार

हार जीत पुन पापा लारै गुरुवर साफ उचारै।
गांठ बाधकर ठाकर चाल्या अबके चिन्ता म्हारै॥ १२६॥

गीता के शब्दों मे मनुष्य श्रद्धा पुरुप है "श्रद्धामयोऽयं पुरुपो यो यच्छ्रद्धः स एव सः" जिसकी जैसी श्रद्धा होती है उसकी उपलब्धियां भी वैसी ही होती है। यदि मनुष्य अपने विश्वास पर अडिग रहता है तो कोई कारण नहीं कि विजय उसके हाथों न लगे।

वोरावड़ के ठा० केशरीसिंहजी आचार्य रायचन्दजी स्वामी के प्रति अच्छी श्रद्धा रखते थे। एक वार कुचामन के ठाकुर ने अचानक वोरावड़ पर हमला वोल दिया। ठाकुर साहव साहसिक नौजवान राजपूतों को साथ लेकर रणक्षेत्र की ओर वढ़े। मार्ग में आचार्य श्री रायचन्दजी स्वामी ठहरे हुए थे। ठाकुर साहव घोड़े से उतर कर स्थान पर आए और मंगल-पाठ सुना। रायचन्दजी स्वामी ने जव इस आकस्मिक रण सज्जा का कारण पूछा तो ठाकुर साहव ने संक्षेप मे सारी वात कही और वोले—यदि जीवित रहें तो फिर दर्शन करेंगे।

लिए इधर-उधर घूम कर स्थान की व्यवस्था देख रहे थे कि साध्वीजी पहुंचते ही ठाकुर साहब की आज्ञा लेकर एक चौकी बिछाकर बड़े ठाट से बैठ गई। मुनिजी और आनेवाली जनता भौचक्के से खड़े देखते ही रह गए।

ठाकुर साहब ने साध्वियों की यह दक्षता और मुनिजी को मुँह ताकते देखकर कहा—महाराज! हो गई चर्चा! स्त्री होकर भी वे इतनी कुशल और साहसिक है, आप पुरुष होकर भी इतने सुस्त और परमुखापेक्षी! क्या चर्चा करेंगे? आप पधारिये!

ठाकुर साध्वी श्री की समयज्ञता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए बहुत दूर तक पहुंचाने के लिए आए।

: ११८ :

अवसरज्ञो हि सर्वज्ञः

ले बाजोटो पग पर पग दे बैठ्या कर खखारो।
तौर देख ठाकर कह होगी चर्चा आप पधारो॥ ११२॥

विद्वत्ता के साथ यदि व्यवहार कौशल न हो तो विद्वत्ता भी उपहास बन जाती है। व्यवहार-कुशलता और समय की सूझ-बूझ ही मनुष्य के व्यक्तित्व को समाज के क्षितिज पर चमका कर महत्वपूर्ण स्थान देती है। सम्भवतः इसीलिए "अवसरज्ञो हि सर्वज्ञः" की उक्ति को इतना महत्व दिया गया है।

साध्वी श्री दीपाजी का नाम उनके उत्कट साहस और व्यवहार-दक्षता के कारण आज भी तेरापंथ समाज मे विश्रुत है। एक बार वे लावा सरदारगढ पहुँची। वहाँ पर एक सम्प्रदाय प्रमुख शास्त्रार्थ करने के लिये बहुत दिनों से उतावले हो रहे थे। साध्वी श्री ने चुनौती स्वीकार करते हुए शर्त मंजूर कर ली। गढ में ठाकुर साहब की मध्यस्थता मे निश्चित हुए कार्यक्रम के अनुसार मुनिजी वहाँ जाकर बैठने के

लिए इधर-उधर घूम कर स्थान की व्यवस्था देख रहे थे कि साध्वीजी पहुंचते ही ठाकुर साहब की आज्ञा लेकर एक चौकी बिछाकर बड़े ठाट से बैठ गई। मुनिजी और आनेवाली जनता भौचक्के से खड़े देखते ही रह गए।

ठाकुर साहब ने साध्वियों की यह दक्षता और मुनिजी को मुँह ताकते देखकर कहा—महाराज! हो गई चर्चा! स्त्री होकर भी वे इतनी कुशल और साहसिक हैं, आप पुरुष होकर भी इतने सुस्त और परमुखापेक्षी! क्या चर्चा करेंगे? आप पधारिये!

ठाकुर साध्वी श्री की समयज्ञता की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए बहुत दूर तक पहुंचाने के लिए आए।

: ११६ :

प्रेरक की करामात

क्या उपवास ? भी साता है कुछ आगे बढ़ो।

बेले, तेले, में बढ़ते-बढ़ते आखिर यहाँ तक कि पांच साध्वियों ने छः महिनों की तपस्या पचखली।

यह है प्रेरक की करामात..!

: १२० :

संकट के समय में

और न चालै जोर जगत मै महामंत्र कै आगै।
सुण नवकार सजोर चोर तो डरता सारा भागै॥१२९॥

साध्वी श्री दीपांजी विहार करती हुई किसी जंगल से गुजर रही थी। मार्ग में कुछ लुटेरे मिले कंधों पर सामान देख कर लेने के लिए मचल पड़े। साध्वियों ने समझाया—हमें मत छूओ, तुम्हे सामान ही चाहिए हम दूर रख देती है तुम जानो, और तत्काल ही सामान का ढेर लगा कर सतियो को चारों और बिठलाकर आप बीच मे बैठ गई, उदात्त स्वर से नमस्कार महामंत्र की ध्वनि निकालने लगी।

यह क्या गुनगुनाहट कर रही हो ?—लुटेरे चमके, कहीं हमारा हाथ-पैर न चिपकादे।

साध्वियाँ—हम हमारा मंत्र स्मरण कर रही है।

यह मत करो !

करें क्यों नहीं जरूर करेंगी। तुम्हें तो सामान जो चाहिए सो तो यह . !

लुटेरे घबराये—लो छोड़ते है, हमे नहीं चाहिए और सामान ज्यो का त्यो छोड़ कर चलते बने।

वास्तव मे भय व संकट के समय बुद्धि का संतुलन रखना ही "स्थितप्रज्ञता" है।

: १२१ :

नियम निष्ठा

जो निज नियम निभावै आखिर विजय सदा वे पावे।
सात वरस काढ्या तबू मैं जद खुद ठाकुर आवे ॥१२०॥

एक वार मोटा गाव के कुछ श्रावकों ने नया मकान बनाने का त्याग कर दिया था। कुछ दिनों के बाद रावजी से अन-वन हो जाने के कारण उन्हें गाव छोड़ कर बाहर जाना पड़ा। कइयों ने 'आपवादिक स्थिति' को मानते हुए अन्यत्र अपने मकान बनवा लिए। किन्तु एक श्रावक विरधोजी कोठारी ने "प्राण जाय पर प्रण नहीं जाई" के अनुसार तंबू में ही अपने डेरे लगाए। एक दो वर्ष नहीं किन्तु सात वर्ष तक सर्दी गर्मी और वर्षा का सामना करते हुए तंबू में ही जमे रहे। उनकी इस दृढ़ता के सामने नतमस्तक होकर स्वयं रावजी उनके पास आए और परस्पर की कड़वाहट को मिटाकर पुनः उन्हें अपने गाव मे लाकर सम्मान्य पद पर प्रतिष्ठित किया। वास्तव में जो अपने प्रण पर दृढ़ रहता है भाग्य स्वयं उसकी सहायता करता है।

: १२२ :

मूर्ति की सेवा

साचै पथ चालणियो किण सू कदे नही भय खावै।
कुंवर लालसिह राणाजी नै साची वात सुणावै ॥१२१॥

उदयपुर के महाराणा जवानसिंहजी के सामने परिषद् में एक प्रसंग चल पड़ा। किसीने कहा—गोगुन्दा के उमराव कुंवर लालसिंहजी आचार्य रायचन्दजी के संपर्क से तेरापंथी वन गए है, सो अव मूर्ति की पूजा नहीं करते।

वात को आगे बढ़ाते हुए राणा ने कहा—क्या कुंवरजी मूर्ति को नहीं मानते ? यह तो अनादि कालीन है, हम भी पूजते है, सभी को माननी चाहिए।

पार्षदों की तीखी नजरें अब कुंवर लालसिंहजी पर जम गई, देखें क्या उत्तर देते है ? धर्म को छिपाते हैं या राणाजी को नाराज करते है ? कुंवरजी की धमनियों में श्रद्धा का ऊर्जस्विल रक्त बह रहा था, विवेकपूर्ण भाषा में बोले—राणाजी से एक नम्र निवेदन है कि हमें राणाजी की ढोलिया की सेवा (चाकरी) करने के लिए बहुत दूर से आना पड़ता है सो आपकी आज्ञा हो तो आपकी एक मूर्ति हम अपने महलों में रखलें और नित्य प्रति उसकी सेवा चाकरी करते रहें।

और हमारी एक मूर्ति आपके चरणों की सेवा मे दिन-रात उपस्थित रहेगी।

राणाजी चौंककर बीच ही मे बोल उठे—नहीं ! नहीं !! ऐसी चाकरी मैं कैसे मान लूं (अस्यान चाकरी हूं कस्यान मानू ?)

तो क्या आप नहीं मानते ?

नहीं ! हर्गिज नहीं !

तो फिर देवता या भगवान् की मूर्ति की पूजा करने से वे कैसे मान लेंगे ? क्या वे इतने भोले है ?

लोगों की हर्ष-ध्वनि के बीच राणाजी ने शिर धुनते हुए कहा—वास्तव मे तुम्हारी बात ठीक है, तुम्हारे गुरु सच्चे हैं केवल मूर्ति की सेवा से मैं भी प्रसन्न नहीं होता तब भगवान् तो कैसे रीझेंगे ?

: १२३ :

बरात का दुल्हा

पद का भूखा देखो मानव कूकाकूक मचावै।
नाम लिख्योड़ो काट दियो तो ही नहीं दिल कुमलावै ॥१२३॥

त्रिमूर्ति की तरह संत का स्वभाव त्रिरूप होता है—सरल, नम्र और निस्पृह। ये तीनों गुण जहाँ प्रकट होते हों वहाँ संत-आत्मा का सच्चा स्वरूप देखा जा सकता है।

मुनिश्री खेतसीजी के विषय में उक्ति है कि चलते-चलाते, खाते-पीते जहाँ कहीं भी उन्हें स्वामीजी का आह्वान सुन पड़ता, वहीं उनके हाथ जुड़ जाते और मस्तक झुक जाता। उनकी सरलता और विनीतता का ही चमत्कार था कि उन्हें आचार्य पद के योग्य समझा गया। किन्तु निस्पृहता का चमत्कार तो तब प्रकट हुआ जब आचार्य पद के लिए लिखा गया उनका नाम भी काट दिया गया और फिर भी मुंह पर एक सिकन नहीं पड़ी। उनकी भावना और वाणी की रेखाओं में कोई अन्तर नहीं आया।

जब आचार्य श्री रायचन्दजी के निकट आप बैठे रहते तो कोई पूछ बैठता—आप बुड्ढे होकर भी नीचे बैठे हैं और ये बालक होकर भी उजले वस्त्र पहने ठाट से ऊँचे बैठे हैं यह क्या बात है ? तो उनका बड़ा मार्मिक उत्तर होता—भोला कहीं का ! इसमें क्या बात है ? जब बेटे का विवाह हो तो बाप भले ही मैले पुराने कपड़ों में बैठा रहे सजधज तो बेटे की होनी चाहिए ? उसके पीछे सबकी शान होती है। ये हमारे मालिक हैं इन्हीं के पीछे सबकी शोभा है, प्रतिष्ठा है। छोटा बड़ा क्या ? बरात का दुल्हा तो गुरु होता है ?

सुनने वाले उनकी नम्र वृत्ति एवं निस्पृह उक्ति के सामने झुके बिना नहीं रहते।

: १२४ :

गहरे संस्कार

वैरी घाव सरावै उण मै है सचमुच अधिकाई ।
नाटक नहि निरखण सू सौ वर्षां की नीव वताई ॥१२२॥

बचपन के संस्कारों में समूचे जीवन की रूप-रेखा छिपी रहती है। बालकों के संस्कार और आचरण ही देश व राष्ट्र का भविष्य बतलाते हैं।

सं० १८७५ के आसपास मुनि श्री जीतमलजी (चतुर्थ आचार्य) हेमराजजी स्वामी के साथ पाली मे विराजे हुए थे। उनकी अवस्था छोटी ही थी। बाजार मे जहाँ दुकान मे ठहरे हुए थे सामने नाटक हो रहा था। नगर के बालक, बुड्ढे, व युवकों का जमघट लगा था। सभी की आँखें नाटक के पात्रों पर टिकी थी। किन्तु एक बृद्ध पुरुष का जी नाटक से उचट कर कोई दूसरा ही दृश्य देख रहा था। दुकान मे बैठे मुनि श्री जीतमलजी अपने लेखन-कार्य मे इतने संलग्न और तल्लीन हो रहे थे कि १॥ २ घंटा तक के समय मे सामने होनेवाले नाटक की ओर पलक उठा कर भी नहीं भाका। वह वृद्ध पुरुष बार-बार बालक मुनि की इस स्थितप्रज्ञता को आश्चर्य भरी दृष्टि से देख रहा था।

नाटक सम्पन्न हुआ, भीड बिखरने लगी कि वृद्ध पुरुष लोगो के समक्ष आकर बड़े श्रद्धा विभोर हृदय से बोल उठा— इस तेरापथ की नींव सौ वर्ष की तो पक्की हो गई।

जनता ने साश्चर्य पूछा—सो कैसे ?

इस संघ के एक छोटे से बालक में भी इतने गहरे संस्कार हैं कि वह अपने कार्य से क्षण भर भी इधर-उधर नहीं झाकता। कितना सुस्थिर है इसका मन ! कितनी दृढ़ है इसकी लगन !! जिस समाज मे ऐसे होनहार बालक है उसका सौ वर्ष तक तो क्या बिगड सकेगा ?

वृद्ध की मार्मिक अनुभूति पर सबका शिर हिल उठा, वास्तव मे बालक का जीवन भावी समाज का बोलता चित्र होता है।

: १०५ :

तेरापंथ का लोकतंत्र

देख नाम दो कहे सुगुरु नें एकहि नाम रखावे ।
बालक की भी उचित बात पर गणपति गौर करावे ॥२३४॥

तेरापथ का लोकतंत्र, एकतंत्र और जनतंत्र का विलक्षण सम्मिश्रण है। छोटे-बड़े प्रत्येक सदस्य को अपने विचार आचार्य के समक्ष विनय पूर्वक प्रकट करने का पूर्ण अधिकार है, और यदि वे उचित होते हैं तो आचार्य उन्हें सहज स्वीकार करके कार्यरूप में परिणित भी करते हैं। अन्यथा आचार्य उन्हें अपना समाधान देकर सन्तुष्ट करने की चेष्टा करते हैं।

बात संवत् १८७७ की है। आचार्य श्री भारीमालजी ने अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति के लिए पत्र में दो नाम लिख दिए "खेतसी तथा रायचंद।"

एक सत्तर वर्षीय साधु मुनि जीतमलजी ने जब यह पत्र देखा तो उनकी जागरूक मेधा सहम गई। एक खतरनाक परम्परा की आशंका से उन्होंने आचार्य चरणों में निवेदन किया—"गुरुदेव! आप जिन्हें भी योग्य समझें अपना उत्तराधिकारी निश्चित कर दें किन्तु नाम एक ही आना चाहिए, दो नहीं।"

आचार्य वर ने सहज मुस्कान के साथ कहा—"दोनो एक ही हैं, मामे भानजे हैं, परस्पर में निपट लेंगे?

नहीं! पद के विषय में विवाद या मनुहार का प्रसंग ही क्यों आए? मेरी नम्र सम्मति में एक नाम रहना ही ठीक है।

आचार्य श्री को शिष्य की दूरदर्शितापूर्ण बात ठीक लगी और रायचंदजी स्वामी का एक नाम ही रखा।

सत्तर वर्षीय मुनि की सूझबूझ तेरापंथ-संगठन के लिए वरदान बनकर उसे एक चमत्कारी लोकतंत्र के रूप में उजागर कर रही है।

: १२६ :

गुरुता का मर्म

बीकानेरी मिसरी सम आचरज होणा चावै।
चोट सह्या पाली वाला नै पावस खुद बगसावै ॥१२५॥

गुरु की आत्मा को दो रूपकों में परखा जाय तो कुसुम और वज्र के रूप मे देख सकते है। किन्तु एक रूपक मे ही देखना चाहें तो बीकानेरी मिश्री के रूप मे उनकी गुरुता का मर्म खोला जा सकता है। वे भूल व अपराध पर गहरी चोट करते हैं, तो गुण व भक्ति पर कृपा का माधुर्य भी बरसाते है।

सं० १६१२ की बात है, पाली के श्रावकों ने जयाचार्य से साधुओं के चातुर्मास के लिए विशेष आग्रह किया। तेरापन्थ की एक उज्ज्वल परम्परा रही है कि चातुर्मास के लिए आचार्य से सामूहिक विनती की जा सकती है किंतु कोई विशेष नाम लेकर नहीं। परम्परा को जानते हुए भी इसकी अवज्ञा करने के दण्ड पर पाली के श्रावकों को समूचा ही चातुर्मास नहीं दिया गया। श्रावक बड़े चिंतित हुए आखिर उन्होंने एक चाल चली।

जयाचार्य का चातुर्मास उस वर्ष उदयपुर मे निश्चित था। वहाँ के नाम का एक जाली पत्र बनाकर पाली से पाँच कोस दूर खेरवा चातुर्मास करने के लिए आई हुई साध्वियो के पास पहुंचे। पत्र दिखाया तो उसमे लिखा था—"पाली चतुर्मास की कोई व्यवस्था न हो सकने के कारण खेरवा चातुर्मास वाली साध्विया पाली चातुर्मास करें ऐसा आचार्य श्री का आदेश है।' साध्वियो को इसमे शंका होने का कोई कारण नहीं था वे तत्काल विहार करके पाली चातुर्मास के लिए पहुँच गई। श्रावक अपनी चाल मे सफल हो गये। चातुर्मासिक प्रतिक्रमण होने के बाद श्रावक क्षमा-याचना करने के लिए आए और अपने इस षडयंत्र का भेद खोलते हुए साध्वियो से पुनः-पुनः क्षमा-याचना करने लगे।

साध्वियों का मन उनकी इस धोखेबाजी पर अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा, श्रावकों से कड़ी फटकार लगाते हुए उन्होंने कहा—तुमने हमारे साथ बहुत बड़ा धोखा किया है। अब चातुर्मास शुरु होने पर हम कहीं जा तो सकती नहीं किंतु चार ही महीने न तो तुम लोगों को व्याख्यान ही सुनाएँगी और न ही तुम्हारे घरो की गोचरी करेंगी।

श्रावक बड़ी दुविधा मे फँस गए "हाथ भी जलाए और भोरण भी न खाया।" कुछ श्रावक उदयपुर गए। जयाचार्य के समक्ष पहुँचते ही जोर-जोर से पुकार उठे—"रावला चोर हाजर है।" आचार्य श्री के चरणों में इस घोर अपराध पर

क्षमा मागते हुए बोले—हमने जो कुछ किया वह अत्यन्त नीचता थी आप जो भी प्रायश्चित्त दें, उलाहना दें, हम दोषी है, चोर है।

जयाचार्य ने कड़ा उलाहना देते हुए कहा—"तुम लोग चातुर्मास मागने लायक नहीं हो, क्या तुम्हारे ये श्रावक के लक्षण है?

किन्तु श्रावक लोग जैसे पृथ्वी से स्थिर और सागर से गम्भीर हो गये। आचार्य श्री का उलाहना घी की तरह पीते गए और बार-बार विनय करके गुरु के महनीय कोप को पुण्य प्रसाद मे बदल दिया।

श्रावकों की सहिष्णुता और विनय पर आचार्यवर का दिल पिघल उठा, वहाँ की साध्वियो का व्याख्यान और गोचरी की आज्ञा देकर आचार्यवर ने अपना आगामी चातुर्मास पाली में बिताने की उद्घोषणा करते हुए बीकानेरी मिश्री के तुल्य गुरुता का मर्म इतिहास के पृष्ठो पर अंकित कर दिया।

: १२७ :

आठ आने की अक्ल

लाड़णु जन कहै खबर नहीं किण रस्ते आवा साम्हे।
जय फरमावे आठ आना की अक्कल भी नहि थांमे ॥१२६॥

व्यावहारिक कुशलता के बिना समझदारी की बड़ी-बड़ी बातें करनेवाले भी छोटी-सी बात पर मूर्खता कर बैठते हैं। छोटी-छोटी व्यावहारिक बातें ही मनुष्य की सभ्यता और समझदारी का प्रमाण देती है।

संवत् १९२२ में जयाचार्य बीदासर से विहार करके लाडनूं पधार रहे थे। लाडनूं का श्रावक-समाज आचार्य श्री का स्वागत करने के लिए बीदासर की ओर चल पड़ा। बीदासर से आने के कई रास्ते होने के कारण कोई किधर चला गया कोई किधर !! और आचार्य श्री सीधे शहर में पधार गए।

श्रावक लोग चक्कर लगाकर वापिस आए, आचार्य श्री से बोले—महाराज ! हम तो सामने गए किन्तु आप दूसरे ही रास्ते पधार गए, हमें बहुत चक्कर खाना पड़ा ?

आचार्य श्री—अपनी गलती से ही चक्कर खाया तुमने तो, लाखों का व्यापार करनेवाले तुम लोगों में आठ आने की अक्ल भी तो नहीं थी ?

सो कैसे ?—श्रावकों ने साश्चर्य पूछा।

बीदासर की ओर किसी ऊंट या आदमी को भेजकर पता लगवाते तो क्या लगता ?

आठ आने !!

तो बस यह आठ आने की अक्ल होती तो इतना भटकना क्यों पड़ता ?

श्रावकों ने अपनी समय की चूक को मानते हुए आत्म-निरीक्षण किया।

: १२८ :

आंख और साख

तन के मोह हुवै मोटा के प्राण मोह नहीं ल्यावै।
छता आख में शस्त्र उठणो जद छाटा आज्यावै ॥१२७॥

साधना के क्षेत्र मे आत्मा का महत्व होता है, शरीर का नहीं, व्रत-लाभ ही जीवन की कसौटी होती है। शरीर-लाभ या शरीर क्षति नहीं। छोटे-से छोटे नियम की रक्षा के लिए भी यदि समस्त शरीर या किसी अंग की कुर्बानी करनी हो तो वह भी वहाँ क्षम्य एवं आदर्श मानी जाती है।

सवत् १९२७ मे जयाचार्य ने बीदासर मे आख का ओप्रेशन (कारी) करवाया। करनेवाले भी कोई डाक्टर नहीं किन्तु एक साधु मुनि श्री कालूजी थे। आकाश मे बादल छाए होने के कारण कुछ अन्धेरा पड़ रहा था। अचार्यवर बाहर खुले में ही थे। ज्योंही मुनि श्री ने आंख मे अस्त्र डाला कि आकाश से पानी की छोटी २ बूदे गिरने लगी। तत्काल आचार्यवर उठे और आख मे अस्त्र होते हुए भी अन्दर पधार गए। वर्षा में न ठहरने का मुनि-व्रत जो था।

देखनेवाले चकित थे कि आचार्य श्री यह क्या कर रहे हैं ?' पर उन्होंने वही किया जो एक महान् आचार्य के आदर्श के अनुरूप था। उनकी दृष्टि में—आख और साख (नियम) के बीच 'साख' का ही महत्व था, आख गौण थी।

यद्यपि इस कारण से आँख की कमजोरी जरूर रह गई थी किन्तु व्रत की तेजस्विता के समक्ष वह सूर्य के सामने जुगनू की तरह नगण्य थी।

: १२६ :

इच्छा मृत्यु

और बात को सागो निमज्या मरणै को के सागो।
सेर अहार कर कोदर कर दियो अणसण घर अनुरागो ॥१२८॥

मनोयोगी—मन और शरीर का स्वामी होता है। जीवन और मृत्यु के दोनों ओर छोर पर उसका साम्राज्य होता है, वह हँसता-हँसता जीता है और हँसता-हँसता मर भी जाता है। जीवन की नांई मृत्यु भी उसकी इच्छा पर निर्भर रहती है। यही उसकी तपस्या का चमत्कार होता है।

संवत् १८६५ में श्री जयाचार्य लाडनूं चातुर्मास करके चूरू पधारे। वहाँ पर तपस्वी मुनि श्री रामसुखजी ने ४५ दिन की तपस्या की। आषाढ़ सुदी ३ को उनका पारणा हुआ और अष्टमी को सहसा स्वर्गवास हो गया। तेरापन्थ शासन के प्रसिद्ध अग्र तपस्वी मुनि श्री कोदरजी ने जब यह देखा कि मेरा साथी मेरे देखते-देखते यों चला गया है तो बोले—रामसुखजी चले गये हैं तो उन्हीं की जगह मेरा संथारा (बिछौना) लगाओ!

साधुओं को तपस्वी की वातो पर आश्चर्य हो रहा था परन्तु उन्होंने वही कर दिखाया जो चमत्कारी सत्य था। बाजरे के पाच सोगरे (मोटी रोटिया) खाकर अत्यन्त आग्रह और वीरतापूर्वक उन्होने जयाचार्य के समक्ष अनशन स्वीकार किया, सात दिन तक समाधि पूर्वक अनशन लेने के बाद आठवें दिन श्रावण वदी १ को उन्होंने इस भौतिक शरीर का त्याग कर वास्तव में ही इच्छा मृत्यु का एक विचित्र उदाहरण रखते हुए "मृत्यु का भी साथ" करने की लोकोक्ति चरितार्थ कर दिखाई।

: १३० :

विरोधी भी प्रशंसक

'एगो एगत्थिए सद्धिं" यदि सारी रात वितावें।
तो भी वहम रती नहीं आवै मघ हित छोग सुणावें ॥१३१॥

कहावत है—"वीर वही है कि जिसके घाव की शत्रु भी प्रशंसा करे"। व्यक्तित्व वही है कि विरोधी भी जिसका लोहा मानें"।

पंचमाचार्य मघवागणी के उज्वल चरित्र के विषय में कहा जाता है कि गण से अलग होनेवाले छोगजी आदि व्यक्ति भी कहते थे कि मघराजजी के सम्बन्ध मे हमे कोई सन्देह या शंका नहीं है। वे वड़े वैरागी और चरित्रनिष्ठ हैं अगर उन्हें अकेली स्त्री के निकट एकात में भी रख दिया जाए तो भी हमे कोई शंका नहीं होगी।

वास्तव मे व्यक्ति की प्रामाणिकता की और चरित्र-निष्ठा की यही कसौटी है। जिसके बारे मे मित्र और शत्रु भी निस्सन्देह हों।

: १३१ :

क्षमा बडन को होत है

बडा सदा ही बड़ी विचारै क्षमा बड़ा ही धारै।
खमत खामणा करणै खातिर मघवा स्वयं पधारै ॥१४०॥

बात संवत् १९४२ की है जब मघवा गणी का चातुर्मास उदयपुर में था वहीं पर एक सम्प्रदाय के प्रमुख श्री का चातुर्मास था। सांवत्सरिक क्षमापना करने के लिये आप स्वयं उनके स्थान में से होकर आए, साथ में काफी साधु व श्रावक-लोग थे। यद्यपि प्रमुख श्री का व्यवहार उचित नहीं हुआ किन्तु आप बड़े प्रेम व सरलता के साथ क्षमापना करके चले आए

पीछे से उन्हीं के बहुत से श्रावकों के मुँह ऐसा सुना गया कि आपने बहुत बुरा किया। एक आचार्य तो आपसे क्षमापना करने के लिए आए और आप उठे भी नहीं ...! वास्तव में वे छोटी उम्र के होकर भी बड़े है, चूकि क्षमा की बड़ाई जो उनके साथ है।

: १३२ :

सच्चे साधु के दर्शन

प्रण पालक सत्पथ चालक को होवै सुयश हमेशा।
राणाजी भी बोल्या म्हे नहीं देख्या साध ऐसा ॥१४१॥

१६४२ का चातुर्मास उदयपुर में करके मघवागणी कविराज सावलदानजी की वाड़ी मे ठहरे। शाम को महाराणा फतेह सिंहजी आचार्यश्री के दर्शन करने आए। महाराणा फतेहसिंहजी वड़े धर्म प्रिय और विद्वान् राजा थे। उनके वारे में यह उक्ति प्रसिद्ध थी—"राण फता अवतार पत्ताको।"

धर्मोपदेश का समा वन्ध रहा था, राणा तल्लीन होकर सुन रहे थे कि सूर्यास्त हो चला और प्रतिक्रमण का समय आ गया। कुल बावीस मिनट की वातचीत को रोकते हुए आचार्यश्री ने कहा—अब हमारे प्रतिक्रमण का समय हो चुका है।

.. "वड़ो हुक्म" कहकर शीघ्र ही राणाजी ने वन्दना की और महलों की ओर चले गए।

कुछ विरोधी तत्त्वों ने इस स्थिति का लाभ उठाना चाहा। महाराणा से निवेदन किया—"ऐसे क्षेत्रों में जहाँ कि आपकी उचित प्रतिष्ठा का ध्यान नहीं रखा जाता है, आपका जाना हमें अखरता है"..... ।

महाराणा उनकी हरकत को ताड़ते हुए बोले—"नहीं! नहीं, कल तो हमने गीता में बताए गए "अनपेक्ष" 'विगत स्पृह' लक्षण वाले सच्चे साधु के दर्शन किए थे। जिन्होंने मेरी भी परवाह नहीं करके अपने आचार नियम का पालन किया।

वास्तव में महत्व उन्हीं का है जो किसी भी मूल्य पर अपने कर्तव्य की अवहेलना नहीं करते।

इति० बो० पु०—१४

: १३३ :

अध जल गगरी छलकत जाय

अभिमानी जो रहे अकड़ में (तो) तुरत पकड़ में आवै।
शहर कुचामण में पंडित की मघवा शान बचावै ॥१४२॥

थोड़ी पूँजीवाला अधिक प्रदर्शन करता है और थोड़े ज्ञान वाला अधिक अभिमान। मघवागणी विहार करते-करते कूचामण पधारे। एक पंडितंमानी व्यक्ति आचार्य श्री के पास आया, अपनी ऐंठ में अकड़ा हुआ संस्कृत में बोलने लगा। मघवागणी धैर्य पूर्वक उसकी बात सुनते गए किंतु वह तो बोलते-बोलते थका ही नहीं। थोड़ी देर के बाद जब वह अशुद्धिया बोलने लगा तो मघवागणी ने धीरे से इशारा किया।

पंडित का अभिमान चूर-चूर होकर बह गया, जनता के उठने के पश्चात् पंडितजी ने निकट आकर आचार्य श्री के चरण पकड़ लिए। आज आपने मेरी लाज बचा दी। जनता के सामने अगर आप यह प्रकट कर देते तो अपनी पंडित-मण्डली में मैं कैसे मुह दिखाता ?

आचार्य श्री के गम्भीर्य और अपने ज्ञान की तुच्छता पर चिंतन करते हुए पंडितजी का अन्तर उन्मेष खुला··

: १३४ :

जब महाराणाजी दीक्षा लेंगे ?

निकमो वाद विवाद बढ़ा क्यू टायम व्यर्थ विताणो ।
देस्यां या नहीं देस्यां जोस्या जद आसी महाराणो ॥१४३॥

विवाद की जड़ अविवेक की खाद पर फलने लगती है। समझदार व्यक्ति विवाद को एक जादूगर की तरह चुटकियों में उड़ा देता है।

एक बार मघवागणी के पास दो व्यक्ति आए और तर्क वितर्क का पुलिन्दा खोलते हुए बोले—अगर महाराणाजी दीक्षा लें तो आप देंगे या नहीं ?

मघवागणी ने कहा—जब महाराणाजी दीक्षा लेने आएंगे तभी हम इस प्रश्न पर सोच लेंगे—अभी कोरा विवाद क्यों बढ़ा रहे हो ?

: १३५ :

अहिंसा का मर्म

खरी वात ने खरो आदमी युक्ति तूं समझावै।
लावै ठाकुर नें राणाजी असली वात वतावै॥१४४॥

उदयपुर के राज-महलों में एक गोष्ठी हो रही थी, जिसमें महाराणा सज्जन सिंहजी, लावासरदारगढ़ के ठाकुर मनोहर सिंहजी, कविराज[१] सावलदानजी, स्थानीय मौलवी साहेव और अम्बालालजी[२] मुरड़िया उपस्थित थे। वातचीत के प्रसग में ठाकुर मनोहरसिंहजी ने पूछा—अम्बाव राजा! आप लोग कहते हैं कि जीव मरता नहीं तो फिर किसी को मारने मे हिंसा (पाप) क्यों मानते है?

१—कविराज सावलदानजी (श्यामलदासजी) धर्म प्रिय कवि और इतिहासकार थे। वीर विनोद नामक मेवाड़ का वृहद् इतिहास उन्होंने लिखा है।

२—अम्बालालजी मुरड़िया अम्बाव राजा के नाम से पुकारे जाते थे वड़े धर्म निष्ठ और दृढ़ श्रावक थे राजतंत्र में अच्छा प्रभाव था।

मुरड़ियाजी बोलने ही वाले थे कि महाराणाजी ने इसका उत्तर देना चाहा। देखिए ठाकुर साहब! मान लीजिए मैं आपसे लावा का राज्य छीन लू तो आपको कष्ट होगा?

ठाकुर—कष्ट की भी कोई सीमा रहेगी फिर?

राणाजी—मैंने न आपके राज्य को मिटाया है न आपको?

ठाकुर—किंतु स्थान जो छूटता है।

राणाजी—बस यही बात अहिंसा के विषय में है जीव नहीं मरता किंतु शरीर छूटना ही तो महान् कष्ट है…।

ठाकुर साहब को सुन्दर समाधान मिल गया और मुरड़ियाजी को अपनी बात का सुन्दर उदाहरण।

अठारह सेर का नाश्ता

साध सत्या री उणोदरी रो के आन्दाजो लागे।
ओ तो हुयो सिरावण करस्या और गोचरी आगे ॥१४५॥

सब रोगों का मूल है 'अजीर्ण'। अजीर्ण का मूल है पाचन शक्ति की दुर्बलता और उसका बीज है—खान पान का असंयम। जो संयमी और तपस्वी होता है उसकी पाचन शक्ति खराब हो इसका कोई कारण नहीं है। पुराने आदमियों के बारे में यह कहा जाता है कि वे २०.२५ सेर का नाश्ता कर जाते थे। इसका मूल इसीमे है कि संयम तथा तपस्या उनके जीवन की मुख्य साधना थी अतः उनकी पाचन शक्ति भी बड़ी प्रबल होती थी।

सूरवाल (ढूढाड़) के एक परिवार में कई अच्छे संत हो गए हैं, जिनमे चैनजी स्वामी, चिमनजी स्वामी और वृद्धिचंदजी स्वामी आदि मुख्य थे। चिमनजी का शारीरिक पराक्रम बहुत अच्छा था। जब वे गृहस्थ थे तो दुकान पर बैठे थे, एक बोरियो से लदी हुई गाड़ी आ रही थी, दुकान के मोड़ पर अड़ गई, गाड़ीवान ने काफी कसा-कसी की किन्तु निकल नहीं सकी तब चिमनजी बोले—क्या तो मर्द हुआ है? एक गाड़ी भी नहीं निकल सकी ?

गाडीवान—अच्छा तो तुम निकाल दो ?

चिमनजी—बोल क्या देगा ?

गाड़ीवान ने शर्त लड़ाई—यदि निकाल दो तो यह समूची गाडी तुम्हारी वर्ना तुम्हारी दुकान मेरी ?

सौदा सही हो गया। चिमनजी उठे और कन्धो का जोर लगाकर गाडी को अपनी दुकान पर लाकर खाली करके धरदी।

हॉ, तो वे ही चिमनजी स्वामी और चैनजी स्वामी एक बार बिहार करते-करते चूरू आए। प्रातः बिहार करने लगे तो गुरुमुख रायजी कोठारी की विनती पर उनके यहाँ गोचरी करने गए। दूध, दही, मक्खन, ठंडी रोटिया आदि लगभग १८ सेर वजन लेकर गाव बाहर आए। शौचादि से निवृत होने के बाद जब आहार करके उठे तो सभी पात्र साफ देखकर कोठारी जी निकट आए और कुछ संकोच खाते हुए बोले—आहार से कुछ कष्ट तो नहीं हुआ ?

चिमनजी स्वामी—कष्ट किसका अभी तो नाश्ता हुआ है, भोजन तो आगे जाकर होगा ?

कोठारीजी—तो फिर कमी क्यों रक्खी ?

चिमनजी स्वामी—तुम्हारी भावना ऐसी ही देखी !

कोठारीजी—उफ ! मैंने तो सोचा आपको तकलीफ उठानी पड़ेगी…।

चिमनजी स्वामी उनकी इस बात पर हसकर चल पड़े।

: १३७ :

वहम की दवा

व्यर्थ वहम की दवा न होवै (पर) चतुर निकाल दिखावै।
एक वार में अर्ध दुघड़ियो पीकर वहम मिटावै॥१४६॥

वहम एक ऐसा रोग है जिसकी एक ही दवा है और वह है 'प्रत्यक्ष दर्शन' वहम होने पर आंखों से देख लिया जाए तो वह 'सत्य के निकट' आ सकता है और शंका प्रति शंकाओं से मुक्ति मिल जाती है।

मघवागणी रतनगढ से विहार करके पायली पधारे, वहाँ पर बीकानेर के भानजी (भानजी नाम के वैरागी श्रावक) दर्शन करने आए; उनकी ५-७ आदमियों के खाने जितनी रसोई और एक दुघड़िया (दो घड़े जितना) प्रासुक पक्का पानी देखकर रतनगढ़ के श्रावकों को शंका हुई कि सम्भवतः इस अकेले आदमी ने इतनी तैयारी साधुओं के लिए (आधा-कर्मिक) की है। श्रावकों ने एक प्रमुख मुनि से अपनी शका बतलाई। मुनिश्री ने साधुओं को उनका पानी लेने से रोक दिया।

भानजी को लोगो की इस शंका का पता चला तो उनको अपने समक्ष बिठा लिया और लगभग २४ बाटियें और दाल खाकर एक ही बार मे आधा दुघड़िया (एक घड़ा करीब) पानी पी लिया।

लोगों ने उनका हाथ पकड़ लिया--बस ! रहने दो। हमारी शंका मिट गई है भानजी ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा—आप लोगों को क्या पता मेरी खुराक कितनी है ? साधुओं को तो देता हूँ तो भक्ति व श्रद्धा पूर्वक अपना संकोच (त्याग) करके देता हूँ। वर्ना तो इतना भोजन पानी मेरे अकेले के लिए मुश्किल से पर्याप्त होता है।

: १३८ :

मन की साधना

भाई इण चंचल मन नैं राखैं ज्यूं ही रह ज्यावैं।
पाच रुपया रो दो फारो दो फलका में आवै ॥१४७॥

मन की गति जल की तरह चंचल और तरल होती है जिस प्रकार जल को जैसा बर्तन मिलता है उसका वैसा ही रूप बन जाता है उसी प्रकार मनको जैसी स्थितियों मे रखा जाए वह वैसा ही सध जाता है। यदि भोग और असंयम की ओर दौड़े तो अनन्त योजन चले जाने पर भी उसे विश्राम नहीं मिलता और संयम साधना की ओर मोड़ा जाए तो वह उसी चरण पर शात और स्थिर हो सकता है। पाच रुपये की दोपहरी करने वाले भी दो रोटियों में परम सतुष्ट रह सकते हैं।

मुनिश्री छोटूजी जयपुर के थे। खाने पीने के बड़े शौकीन थे। कहा जाता है कि दुपहरी (टीफन) में पाँच रुपयों की वर्फी की आवश्यकता होती। जब दीक्षित होने जयाचार्य के पास आए तो जयाचार्य ने मधुर हास्य करते हुए कहा—भाई! तुम बाबू लोगों को तो पाच रुपये की दुपहरी चाहिए और यहाँ रोटी का भी पूरा पता नहीं है, कभी अशन और कभी अनशन?

मुनिश्री छोटूजी—पाच रुपये की वर्फी न सही दो रोटी तो मिल जाएगी और वे भी न मिले तो कोई बात नहीं। सच है "मन भर गया तो सब कुछ भर गया"—मन की साधना ही मुनिजीवन का आदर्श पथ है।

: १३६ :

मन नहीं बंधना

पग जंजीरा बाध्या रहज्या मन नहीं बाध्यो रहवै।
मगन छगन की आछी जोड़ी पृथ्वी मुनि त्या टैवे ॥२४८॥

सच्ची निष्ठा हिमालय-सी अडोल होती है, उसे कष्टों के तूफान कभी हिला नहीं सकते, मन की लगन तन के बन्धने पर भी निर्बंध रहती है, और अन्त में उसीकी विजय होती है।

मुनिश्री पृथ्वीराजजी की स्मृति के साथ-साथ इतिहास के अनेक धुंधले चित्र स्पष्ट हो उठते हैं। उनकी योग्यता का प्रमाण तो यही है कि दीक्षा लेने के उसी वर्ष वे अग्रगण्य बना दिए गये। उन्होंने अपनी प्रेरणा से अनेक दीक्षार्थियों का मार्ग दर्शन किया और करीब २२ साधु-सतियों को स्वयं के हाथ से दीक्षा भी दी, जिनमें जवानजी स्वामी, छगनजी स्वामी, नथमलजी स्वामी, किस्तूरचन्दजी स्वामी आदि के नाम उल्लेखनीय है।

एक वार संवत १९४३ में मगनलालजी स्वामी की दीक्षा हो जाने के वाद मघवागणी ने मुनिश्री पृथ्वीराजजी से कहा— अव तो एक छगन और आ जाए तो मगन छगन की जोडी वन जाए! छगनजी कानोड़ के दीक्षार्थी थे किन्तु सम्वन्धियों ने आज्ञा मे कठिनाई कर रखी थी। मुनिश्री पृथ्वीराजजी जव कानोड़ पहुंचे तो सम्वन्धियों ने दीक्षा रोकने के लिए छगनजी का पैर साकलों से जकड़ दिया।

४१ दिन तक साकलों से जकड़े रहने पर भी उनकी भावना में कोई अन्तर नहीं आया, प्रत्युत कष्टों की आग में और भी परिपक्व वनकर निखर उठी। तव कहीं परिवार वालों के समझ मे आया कि साकलों से तन ही वाधा जा सकता है मन नहीं। उन्हें लेकर मुनिश्री के सामने उपस्थित हुए और दीक्षा की प्रार्थना करने लगे। मुनिश्री ने उन्हें भागवती दीक्षा देकर आचार्यश्री के चरणों मे लाकर मगन छगन की जोड़ी की कल्पना को साकार की।

अति विश्वास

स्वप्न शकुन ज्योतिष पर अति विश्वास न करणो भाया।
जन्म कुण्डली धरी रह गई माणक स्वर्ग सिधाया ॥१४०॥

जीवन के क्षेत्र मे विश्वास जितना फलदायक है, अति-विश्वास उतना ही हानिकर और खतरनाक हो जाता है। वह भी ज्योतिष और उसमें भी आयुष्य के सम्बन्ध का अति विश्वास कभी बहुत बड़ा धोखा दे जाता है .....

तेरापंथ के छठे आचार्य माणकगणी ने संवत् १९५४ का चातुर्मास सुजानगढ़ किया। वहाँ आपका शरीर काफी अस्वस्थ हो गया यद्यपि आपकी अवस्था ४२ वर्ष की ही थी। मंत्री मुनि मगनलालजी आदि ने जब देखा कि आचार्यश्री का शरीर अब रहने वाला नहीं तो सभी ने मिलकर पीछे आचार्य पद की व्यवस्था के लिए निवेदन किया। माणकगणी के हृदय में अपनी जन्म पत्री के प्रति अत्यन्त विश्वास था और मानते थे कि अभी कोई चिन्ता की बात नहीं है।

साधु और श्रावक वर्ग के पुनः अनुरोध करने पर भी उनके इस विश्वास के कारण कोई ध्यान नहीं दिया गया और आखिर मे कुण्डली ने धोखा दे दिया। संघ के लिए बिना कोई आचार्य नियुक्त किए ही आपका मिती कार्तिक वदी ३ को स्वर्गवास हो गया।

कसौटो

माथै चाहिजै मालिक म्हे नहिं मालक बणणां चावां ।
इसडा आत्मार्थी संतारी म्हे बलिहारी जावां ॥१५०॥
मोकै पर ही हुया करै है नर री अग्नि परीक्षा।
चोपन रो इतिहास दे रह्यो आही सुन्दर शिक्षा ॥१५१॥

कसौटी व्यक्ति, संस्था और समाज आदि सभी की होती है और वह भी बिना किसी पूर्व सूचना या समायोजना के कसौटी के समय जो खरे उतरते है उनकी सत्यता और महानता का लोहा सभी को मानना पड़ता है।

माणकगणी के स्वर्गवास के पश्चात् संघ में एक चिन्ता की लहर फैल गई, आचार्य निर्वाचन की समस्या सब के सामने थी। पद की मोहिनी माया के सामने साधुओं की बुद्धिमानी, निष्काम वृत्ति और सेवा-भावना की कसौटी थी। मन्त्री मुनि मगनलालजी स्वामी ने बड़े सन्तों को आज्ञा, आलोयणा देने की जिम्मेदारी सौंपकर और समूची व्यवस्था अपने हाथों मे सम्भाले रखी। सुजानगढ़ से विहार करके लाडनूं आ गए, वहाॅ से दूरस्थित साधु साध्वियों के सिंघाड़े आने लगे।

पोष वदी ३ तक वडे कालूजी स्वामी आए। उसी दिन रात को ५१ मुनियों की सभा के वीच घटना पर खेद प्रकट करते हुए कालूजी स्वामी वोले—

सन्तों! हमे मालिक चाहिए—मालिक दो।

मंत्री मुनि मगनलालजी—आप सब में वड़े है, समझदार है, आप ही चुन दीजिए।

कालूजी स्वामी—नहीं! नहीं! आप ही चुनिए!

इस प्रकार मनुहारों के वीच सभी साधुओं ने एक स्वर से कहा—आप जिन्हें भी चुनेंगे हमें सहर्ष स्वीकार है। आप शीघ्र नाम खोल दीजिए

कालूजी स्वामी—हमारे आचार्य है श्री 'डालचन्दजी' जो कच्छ से आ रहे है।

समूचे संघ ने हर्ष के साथ उनकी हार्दिक भक्ति से वन्दना की। आचार्य के चुनाव का यह अभिनव प्रयोग तेरापंथी मुनिग्रों की पद निष्कामता और हृदय की महानता का ज्वलंत उदाहरण है।

मान छुआ भी नहीं

सिरीलालजी कहै कालूजी ! थांनै पूज्य बणासी ।
हांडी कै पिंदै सो कालो कहो दाय कद आसी ॥१५२॥

शासन के इतिहास को संकलित करके मूर्त्त रूप देने का मुख्य श्रेय पानेवाले मुनियो मे कालूजी स्वामी का नाम आज भी गौरव के साथ लिया जाता है। हस्त कौशल उनका सराहनीय था। जयाचार्य की आख का ओपरेशन उन्होंने ही किया था। लाखों पद्यों को लिपिबद्ध करके हस्त-लेखन की परिपाटी को जीवित रखा था।

संवत् १९५४ का चातुर्मास उदयपुर में था। वहीं पर स्थानकवासी आचार्य श्रीलालजी का चातुर्मास था। माणक गणि के देहान्त का समाचार सुनकर श्रीलालजी ने एक भेंट में आपसे पूछा—अब आप लोग क्या करेंगे ?

कालूजी स्वाजी—हम सभी साधु मिलेंगे और किसी एक सुयोग्य मुनि को आचार्य चुन लेंगे।

आचार्य श्रीलालजी—आपकी योग्यता को देखते हुए लगता है आप ही को चुना जाएगा।

कालूजी स्वामी ने चौंककर निश्छल भाव से कहा—ना! ना! ऐसी बात मत कहना, ऐसी मेरे में क्या योग्यता है? हंडियाँ के पेंदे से काला तो मेरा चेहरा है। हमारे संघ में बहुत से सुन्दर व योग्य मुनि हैं।

आचार्यजी उनकी निश्छल निरभिमानिता को देखकर दंग रह गए। उनका जीवन सूत्र आज भी यह स्पष्ट कहता है कि—मान छोड़ने से ही मान मिलता है। योग्यता की अनासक्ति ही महानता का मन्त्र है।

: १४३ :

मौन भी कब ?

दुराग्रही नै भी समझावै जुगति सू मतिशाली।
झरै कठै स्यू पाणी देखो पड्यो पातरो खाली ॥१५३॥

नीति-सूत्रों में "मौन मूर्खस्य भूषणम्" कहकर मौन को मूर्ख का भूषण माना है, किन्तु "मौन के पीछे भी देश काल का विवेक न रखा जाए तो वह मौनं मूर्खस्य लक्षणम्" भी बन जाता है। मनुष्य की विज्ञता इसी में है कि वह समय पर उचित बात कह कर गुण का सत्कार और दोष का प्रतिकार करता रहे।

संवत् १६४२ मे आचार्य श्री मघवागणी ने उदयपुर में चातुर्मास किया। स्थिति को देखते हुए आचार्य श्री ने यह आदेश दिया कि कोई भी गृहस्थ साधुओं को किसी भी गलती पर सावधान करे तो बिना कोई वाद-विवाद बढ़ाए उसे सहज स्वीकार कर लेना चाहिए।

मुनि श्री डालचन्दजी (सप्तमाचार्य) गोचरी को जा रहे थे। आदेश का सुराक पानेवाले एक-गृहस्थ (विरोधी) ने जोर से शोर मचाया—देखो पानी गिर रहा है। मुनि श्री तो अभी गोचरी लाने जा रहे थे, पानी था ही कहाँ अतः इस बात पर बिना गौर किए वे आगे चलते रहे।

देखो-देखो! कितनी देर से कह रहा हूँ सुनते ही नहीं हो पानी गिर रहा है—उसने तमक कर कहा।

मुनि श्री धर्म-संकट में थे एक ओर स्वीकार करके मौन रहने का आदेश और दूसरी ओर यह सफेद झूठ! सहसा इस उलझन के भंवर से किनारा लेते हुए बाजार के मोड़ पर पैर रोके, और झट से एक चबूतरे पर खड़े हो गए। तमाशबीन लोगों का एक अच्छा जमघट वहाँ लग गया। मुनि श्री ने उस गृहस्थ से पूछा—क्या बात है?

क्या-क्या सुनते ही नहीं हैं—कितनी दूर से पानी गिरता आ रहा है? जनता की ओर देखते हुए मुनिश्री बोले—इसका कहना आपने सुना?

अब देखिए! यह रीता पात्र है। पानी कहाँ गिरा, किसमें गिरा?

उनकी सच्चाई का जादू सबके सिर पर चढ़कर बोलने लग गया। उस गृहस्थ के पैरों के नीचे से धरती जैसे खिसकने लग गई, लोगों की आँखों और होठों पर उसके प्रति घृणा और दुत्कार की फुंकारें निकल रही थी।

मुनि श्री ने आचार्यवर के समक्ष ऐसी परिस्थिति पर बोलने का कारण जब स्पष्ट किया—तो आचार्य श्री ने प्रसन्न होकर उनकी समयज्ञता पर साधुवाद दिया।

: १४४ :

सत्य और व्यवहार

घर साचो होवै तो भी राखो व्यवहार सदाई।
एक-एक उपकरण दिखाया (ज्यू) शका पडै न राई ॥१५४॥

मुनि श्री डालचन्दजी ने आबू जाते हुए मार्ग में एक धर्मशाला में विश्राम लिया, रात को वहाँ चोरी हो गई। प्रातः पुलिस ने धर्मशाला के दरवाजे बन्द कर घेरा डाल दिया। मुनि श्री ने थानेदार साहब से कहा—हमे बहुत दूर जाना है अतः पहले हमारी देख भाल करलें तो हम विहार करदें।

थानेदार—आप जाइए! आपके पास क्या धरा है?

मुनि श्री—नहीं! ऐसे तो कैसे जाए, हमारे जाने पर पीछे से यह भी कहा जा सकता है कि क्या पता इन्होंने ही चोरी की हो? और भी न जाने क्या-क्या?

तभी थानेदार ने देखा कि फटे पुराने चिथड़ों में लिपटा एक लंगडा बार-बार कूड़े के ढेर पर नजर टिका रहा है, सहसा थानेदार ने एक ठोकर लगाई कि उस ढेर में से गुम हुआ बटुआ निकल गया।

चोरी के भेद पर सभी चकित थे। थानेदार ने कहा—देखिए महाराज! चोरी यू पकड़ी जाती है। आपके पास हम क्या देखते, भले आदमियों को तो सिर्फ तंग किया जाता है, वाकी चोर तो हमारे से छिपे थोड़े ही रहते है।

मुनि श्री ने वात की तह में जाते हुए कहा—"यह तो ठीक है, किन्तु अगर मैं यों ही चला जाता तो सम्भव है आप पर भी आक्षेप आ सकता था। इसलिए मैं मानता हूँ कि भले ही हम अपने आप मे सच्चे हों फिर भी हमारा व्यवहार ऐसा होना चाहिए ताकि किसी को शंका करने की गुंजाइश भी न रहे।

: १४५ :

हमारा समाजवाद

सुन्दर सुन्दर चीज देख नहीं मुनि मन में ललचावै।
पुस्तक पाना आचारज रा डालिम साफ सुणावै ॥१५५॥

तेरापंथ का विधान आज से दो सौ वर्ष पहले के समाजवाद का सजीव चित्र है। संघ का प्रत्येक सदस्य उत्पादक है, संग्राहक है और उपभोक्ता भी है, किंतु मालिक कोई नहीं है। प्रत्येक वस्तु संघ की है और सबके लिए समान रूप से उपभोग्य है। उस पर किसी का अपनत्व नहीं, वह संघ के नाम से

ली जाती है और उसीके अधिकार में रहती है। कोई भी व्यक्ति पुस्तक, पन्ने, वस्त्र, पात्र, शिष्य आदि अपने ही स्वामित्व पर नहीं ले सकता है।

एक बार मुनि श्री डालचन्दजी सौराष्ट्र में विचरते भ्रागध्रा जानेवाले थे। लोगों ने कहा वहाँ अमरसी ऋषि का बहुत दबदबा है, उनकी इच्छा के बिना वहाँ कोई टिक नहीं सकता। किन्तु मुनि श्री बिना परवाह किए आत्म-विश्वास का संबल लेकर वहाँ चले गये। अमरसी ऋषि से जब उनकी भेंट हुई तो बड़ा ही स्नेहपूर्ण सत्कार किया उन्होंने। अपने उपाश्रय में ले गए और वहाँ की विविध ऐतिहासिक कलात्मक वस्तुएं मुनिश्री को दिखलाई। ऋषिजी ने १० पत्रों में लिखे गए तीन सूत्रों की एक कलापूर्ण प्रति, सुन्दर चित्र खचित तुम्बा, और रेशमी रजोहरण व्यक्तिगत रूप में मुनि श्री को भेंट करनी चाही। किन्तु मुनि श्री ने यह कहकर अस्वीकार करदी कि हमारी प्रत्येक वस्तु संघीय सम्पत्ति के रूप में रहेगी, निजी सम्पत्ति नहीं।

: १४६ :

मंत्र भी अभिशाप

विद्या नैं भां नही पचाणै वालो करलै हाणी
मिन्टा मे ही गुड़ग्या ठाकुर कर कर खींचाताणी ॥१५६॥

जिस प्रकार अन्न का अजीर्ण शरीर में अनेक प्रकार के विकार पैदा कर देता है, वैसे ही विद्या का अजीर्ण जीवन मे अनर्थ-परस्परा को जन्म देता है। विद्या, मन्त्र, तंत्र, जब प्रदर्शन या कुतूहल के साधन वन जाते है तो उनका वरदान भी अभिशाप बन जाता है।

मुनि श्री डालचन्दजी कच्छ में विहार करते-करते एक गाव मे गए। गाव के गढ में आपने विश्राम लिया। गढ के वातावरण में औदासीन्य और शोक के लक्षण देखकर वहीं के किसी विश्वस्त व्यक्ति से मुनि श्री ने पूछा तो उसने बताया कि यह सब मंत्र का अभिशाप है।

मुनि श्री कैसे ?

यहाँ के ठाकुर अच्छे वीर थे, मंत्र तंत्र के भी जानकार थे।
एक बार शिकार करके लौट रहे थे कि सामने एक नाग नागिन का जोडा मिल गया जिसकी पीठ पर एक छोटा श्वेत सर्प बैठा चल रहा था। ठाकुर को कुतूहल सूझा, घोड़े से नीचे उतर कर मंत्र पढ़ा और एक लकीर खैंचदी। नाग का जोड़ा चलता-चलता वहीं रुक गया। श्वेत सर्प नीचे उतर कर लकीर पर लोटा और उसे मिटाकर फिर जोड़े की पीठ पर चढ़कर आगे चल पड़ा। ठाकुर साहब ने दुवारा लकीर खींची जोड़ा रुक गया, और उस श्वेत सर्प ने लोटकर मिटादी, और जोड़ा आगे बढ़ गया।

ठाकुर साहब का कुतूहल और ज्यादा बढ़ गया। तीसरी बार जब घोड़े से उतरे तो चरवादार ने बहुत मना किया—इन विषैले जन्तुओं से अधिक छेड़छाड़ करना ठीक नहीं है, श्वेत सर्प पर आपका मंत्र नहीं चल सकता है आप रहने दीजिए। किन्तु खून के जोश और मन्त्र के अभिमान से चरवादार की बात का उपहास करके तीसरी बार फिर लकीर खैंचकर घोड़े पर चढ़ गए। नाग का जोड़ा ज्योंही रुका कि वह श्वेत सर्प तिलमिला उठा, सूर्य के सामने देखकर उसने लकीर पर रोष भरी फुंकार मारी कि घोड़े पर बैठे-बैठे ही ठाकुर साहब नीचे गिर पड़े और खत्म हो गए—बात कहते-कहते उनकी आंखें डबडबा आईं—

इस प्रकार यह मन्त्र भी अभिशाप बन गया।

: १४७ :

जिम्मेदारी की अवहेलना

जीमण कै लालच सूं सतियां नै जंगल में छोड़ी।
साध श्रावकां की है जोड़ी फिर भी कहै गप्पोड़ी ॥१५७॥

साधु जन विहार के अनेक कष्ट उठाकर भी जन-कल्याण के लिए सतत घूमते रहते है, यह उनका कर्त्तव्य है, जिम्मेदारी है। किन्तु उनकी इस धर्म-यात्रा में श्रावको के भी कुछ कर्त्तव्य होते है। यदि श्रावक अपनी छोटी से छोटी जिम्मेदारी से भी चूकता है तो वह जिम्मेदारी की अवहेलना होती है।

एक वार कुछ साध्वियों को मेवाड़ के किसी एक गाँव से विहार करके दूसरे गाँव जाना था। रास्ता वड़ा पथरीला और ऊबड़-खाबड़ था, छोटी-छोटी पगडडियो के कारण अपरिचित व्यक्ति भटक जाता। श्रावक लोग कुछ दूर तक साथ जाने के वाद वापिस लौटने लगे तो साध्वियों ने कहा—रास्ता अपरिचित है और वडा ऊबड़-खाबड है, यदि कोई एक व्यक्ति बताने वाला हो तो ?

महाराज! हम सभी आपकी सेवा मे साथ जाते किन्तु गाव में लड्डुओं का जीमन है सो आज तो नहीं जा सकते? गाव पास मे ही है आप सीधी चली जाइए।

खैर साध्विया अकेली चल पड़ीं, राह छूट गई और कड़ी धूप मे वडे कष्ट पूर्वक चक्कर लगाती हुई अगले गाव में पहुँची।

डालगणी ने जव यह सुनी तो उन्हें वड़ा दुःख हुआ। वहाँ पर चातुर्मास करवाने वन्द कर दिए। श्रावकों ने चातुर्मास के लिए विनती की तो आपने उपालम्भ देते हुए कहा—तुमसे एक वक्त के लड्डू भी नहीं छूटते तो क्या हमारे साधु-साध्वी फालतू है? श्रावकों ने अपनी जिम्मेवारी की अवहेलना पर वार-वार पश्चाताप करके क्षमा याचना की। डालगणी ने उन्हें कर्त्तव्य के प्रति जागरुकता का वोध-पाठ दिया।

: १४८ :

अन्धा भी चकमा देता है

धर्म नाम पर चाहे जैसी रच लै धूर्त ठगाई ॥
पण उणरो तांवो घसणै वाला भी मिल ज्या भाई ॥१५८॥

धोखा खानेवालों में अधिक संख्या उन्हीं की होती है जिनमे बुद्धि की कमी और अन्धविश्वास का बाहुल्य होता है। जो वास्तविकता की तह में पहुँचते है वे बहुत बार दुनिया को धोखेबाजों से सावधान कर देते है।

सम्वत् १९५७ मे डालगणी बीदासर मे विराजे थे। उदयपुर के प्रज्ञाचक्षु भाई डालचन्दजी बोराणा अपने पुत्र को साथ लेकर दर्शन करने आये। डालगणी से एकान्त मे निवेदन किया—एक रात को मैं सो रहा था कि अचानक एक ध्वनि आई—"जा पैरों पर गिर" शीघ्र ही पाच सौ घरों को साथ लेकर उनके चरणों मे जा" मैने पूछा—किसके चरणों मे ?

तो उत्तर आया—डालचन्दजी स्वामी के।

मैंने फिर पूछा—किस बहाने ? तो बताया कि—"उज्जैन के एक यति के पास प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ है, जिसमें तेरापंथ की चर्चा है" सो मैं उज्जैन गया वह ग्रन्थ भी वहाँ है सातों आचार्यों के नाम है किन्तु ५०० सौ रुपये मांगता है। डालगणी को अन्धे की चालबाजी समझते देर नहीं लगी। वहाँ प्रश्रय नहीं मिलने के कारण मुनि श्री मगनलालजी के पास आया वहाँ भी उसकी दाल नहीं गली, आखिर श्रावकों से बातचीत करके उसने ५०० सौ रुपये माँगे।

श्रावकों ने कहा—हम भी आपके साथ चलें ?

डालचन्दजी—नहीं, मुझे अकेले को ही देगा, किसी को साथ लाने की मनाही की है।

श्रावकों ने कहा—तो आप उनसे पूछ आइए।

उसने भी अपनी चाल चलती नहीं देखकर कहा—ठीक है पूछ आऊँगा ? तब श्रावकों ने गाड़ी का किराया देकर उनको विदा किया, किन्तु पूछ कर वापिस कौन आता ? और तब सबके सामने यह भेद खुल पड़ा—अन्धा आँखवालों को चकमा देने आया था।

: १४६ :

दसमन का हलुआ

झूठा बोलो बात-बात मे स्वय पकड़ मे आवै।
अस्सी मण गुणतीस सन्त कहो किता दिना मे खावै॥१५१॥

एक नीति वाक्य है—"बीती अवस्था, हाथ से छूटा तीर ओर मुँह से निकली बात कभी लौट कर नहीं आती", इसलिए इनके प्रयोग में अत्यन्त सावधानी अपेक्षित है। अविवेक पूर्ण बात कह देने के बाद पश्चाताप करना पडता है।

सम्वत् १६५६ की बात है, आचार्य श्री डालगणी व्यावर पधारे। इतर सम्प्रदाय के कुछ भाई आप से बात कर रहे थे कि बीच ही मे एक मूसलचन्द ने कह मारा—आप से क्या बात करें जी ! अभी-अभी रास्ते मे दसमन का हलुआ बना कर खा गए।

डालगणा ने शान्ति और धैर्य पूर्वक पूछा—दसमन आटा या मैदा ?

आटा !

अच्छा, दसमन आटे का चीनी, घी और पानी डालने के बाद कितना हलुआ होता है ?

एक मन का आठ मन होता है—किसी ने कहा।

तो दस मन का अस्सी मन हुआ और इन दिनों मे कुल २६ साधु-साध्वियाँ हमारे साथ में चले आ रहे है, तो सोचना तो चाहिये आपको २६ आदमी ८० मन हलुआ कितने दिन में खा सकेंगे; कैसे पास मे रखकर साथ लिये चलेंगे।

लोगों ने उसे बहुत झिड़का क्या चण्डूखाने की गप्प लड़ाने आया है, और तब मूसलचन्द के पास अगल-बगल झाँकने के सिवाय और कोई उत्तर नहीं रहा।

: १५० :

वचन का पालन

वडा आदमी वचन कयोड़ो सदा निभाणो चावें।
चतुर्मास नहीं अठै करूँ (जो) राणो भी कह ज्यावें ॥१८०॥

महापुरुषों के वचन—"विदुषा वदनाद्वाचः द्विरदाना-रदा इव" हाथी के दांत की तरह निकलने पर फिर लौटते नहीं। कष्टों, बाधाओं और प्रलोभनों के साथ प्राणों का खिलवाड़ खेल कर भी वे अपने वचनों को निभाना चाहते हैं।

संवत् १६५६ मे डालगणी पाली मे विराजे थे। वहाँ पर थली के प्रमुख श्रावक शोभाचन्दजी वैगानी, श्रीचन्दजी गधैया आदि की विनती पर आपने चातुर्मास थली मे करने का वचन दे दिया। कुछ दिनों बाद मोतीझरा निकलने से आपका स्वास्थ्य काफी गिर गया था, फिर भी स्वस्थ होते ही आपने विहार का निश्चय कर लिया।

इधर मेवाड़ के हजारों नर-नारियों ने पाली जाकर मेवाड़ भूमि में पधारने का अत्यन्त आग्रह किया। अस्वस्थता तथा थली में चातुर्मास करने के निश्चय के बावजूद भी आप उनके आग्रह को टाल नहीं सके और उदयपुर होकर थली मे जाने की घोषणा करदी गई।

मेवाड़ी श्रावकों की गुप्त योजना के सकेत आपके कानों मे भनभनाए और तत्क्षण आपने मगनलालजी स्वामी को बुला कर कहा—मगनजी! मैंने सुना है कि मेवाडवाले इस भरोसे है कि उदयपुर जाने के बाद महाराणा फतेहसिहजी से विनती करवा के चातुर्मास यहीं करवा लेंगे, सो उन्हें अच्छी प्रकार समझा दो कि यह चातुर्मास तो थली में कह दिया है सो वहीं पर होगा। भले ही महाराणा हो या और कोई। बहुत हुआ तो अगले वर्ष के लिए कह सकता हूँ। सच ही वचन पालन की तेजस्वी निष्ठा के सामने महनीय आग्रह भी ना कुछ था।

: १५१ :

घाटे का सौदा

म्हे साचा तो क्रिया आप की है वट्टे खाते मे ।
थे साचा तो पड़सी म्हारै जूत घणा माथै में ॥१६१॥

आस्तिक और नास्तिक वाद बहुत करके बौद्धिक उलझन ही है। परलोक को मान करके आस्तिक जो सदाचार, सत्य, संयम का पालन करता है वह नास्तिक की कल्पना के अनुसार व्यर्थ कष्ट के और पारलौकिक अभिसिद्धि के लिए कोरा भ्रम है और परलोक में अविश्वास रख कर नास्तिक जो असंयम, भोग और स्वेच्छाचार की बाढ़ में बहता है उसका फल आस्तिक की व्याख्या के अनुसार भयंकर नारकीय यातनाओं से भुगतना पड़ता है। इस तथ्य से हम समझ सकते है कि कौनसा घाटे का सौदा है।

डालगणी उदयपुर से विहार करके भुवाणा गाव पधारे।
विहार व रुग्णता के कारण शरीर पर बहुत खिन्नता छा रही थी।

जोधपुर वाले वच्छराजजी सिंघी जो उस समय मे भी अपने आपको नास्तिक मानने में गौरव समझते थे। डालगणी से उनका अच्छा सम्पर्क था। भुवाणा मे दर्शन करने आए, शरीर की यह कमजोर स्थिति देखकर हंस पड़े, महाराज! यह इतनी कष्टचर्या आप किस लिए कर रहे हैं? मेरे सिद्धान्त के अनुसार आपका यह सब देह-दण्ड निरर्थक जाएगा।

डालगणी तत्त्व की ग्रंथि खोलते हुए बोले—और कुछ तो नहीं होगा?

सिंघीजी—और तो क्या होगा?

डालगणी—और सिंघीजी! यदि हमारे शास्त्र सच्चे हो गए तो?

सिंघीजी ने शिर धुनकर कहा महाराज! तब जूते इतने पड़ेंगे कि धरती भी नहीं झेलेगी और तब उनके सामने यह ध्वनि स्पष्ट गूँज उठी—"नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको इतः" यदि कुछ भी नहीं है तो हमारा कोई नुक्सान नहीं, किन्तु यदि कुछ है तो बिचारा नास्तिक मारा जाएगा।

बुद्धिमान् इस घाटे के सौदे से हमेशा दूर रहकर जीवन के परम मूल्यों के विषय मे चिंतन-धारा स्पष्ट रखें।

: १५२ :

विश्वास फल लाता है

जन्त्र मंत्र बूटी जडिया मैं (है) आस्था ही फलदाई।
जहर उतरग्यो जद डालु नावै की धोक लगाई ॥१६२॥

श्रद्धा को अमृत माना गया है, वह जड़ को गति देती है और निष्प्राण मे प्राण संचार करती है। जीवित विश्वास सदा सफल होता है, और अनेक चमत्कार पैदा करता है।

बंगाल (मेहमद सिंह) में गुलावखा नामका मुसलमान भाई एक तेरापंथी श्रावक (भोपतरामजी जम्मड सरदारशहर) के

निकट रहता था। गुलावखा को साप काट गया, वड़ी चिन्ता छा गई। भोपतरामजी ने कहा—मेरे गुरु की एक वार ओट ले ले. मेरा विश्वास है तेरे जहर नहीं चढ़ेगा, और ज्योंही उसने डालगणी के दर्शन करने का संकल्प किया वह विल्कुल स्वस्थ हो गया। श्रद्धा का चमत्कार विजली के कंपन की तरह उसके मनके कण-कण को तरंगित कर गया। देश में आने पर तत्क्षण वह लाडनू की यात्रा पर चल पड़ा और गाव मे जाकर पूछने लगा—डालु महाराज का मन्दिर कहाँ है? कुछ समझदार लोगों ने उसकी वात का भेद समझकर आचार्यवर के चरणों मे उपस्थित किया। वह श्रद्धा-विभोर हो वारम्वार उनके गुणगान करने लगा। धर्म का रहस्य पाकर उसने गुरु-धारणा करली और मद्य मास का परित्याग कर दृढ़ श्रद्धालु वन गया। पुत्रियों की वरात मे आनेवाले सम्वन्धियों से उसका पहला करार होता—मेरे घर पर शाकाहारी भोजन मिलेगा। मेरी पुत्री को ससुराल मे मास खाने के लिए वाध्य नहीं किया जा सकेगा।

धीरे-धीरे उसका वहुत-सा परिवार शाकाहारी होकर तेरापन्थ का अनन्य श्रद्धालु वन गया। जहाँ भी उसकी पुत्रिया गई वहाँ प्रायः परिवार को शाकाहारी वना लिया। मुसलमान परिवार की इस प्रकार की श्रद्धा और सदाचार मूलतः एक विश्वास का ही सुफल है।

: १५३ :

भिक्षा भी कला है

जैन मुनि की भिक्षा वृत्ति है सब सू ही आली।
हठ मनुहार विनां नहीं लेवै हो चाहे पात्र्यां खाली ॥१५३॥

आवश्यकता होने पर भी संयम रखना बड़ा कठिन होता है। जो आवश्यकता के लोभ का संवरण करके चलता है उसके कोई कमी नहीं रहती। तेरापन्थ की भिक्षा विधि की प्रमुख विशेषता यही है। वहाँ आवश्यकता को गौण करके दाता की भावना का बल और उत्कृष्टता देखी जाती है। एक रोटी देनेवाले से आधी या पाव ही लेने की चेष्टा होती है न कि दो और इसी कारण दाता की भावना सदा ही बढती रहती है। तेरापंथ की भिक्षा-विधि भी एक कला है।

मुनिश्री फोजमलजी जिनकी ख्याति "फोजी लाट" के नाम से आज भी जीवित है, बड़े फक्कड और मिलनसार थे। उनका शास्त्रीय ज्ञान बहुत गम्भीर था। तत्त्व-प्रतिपादन की शैली

बड़ी सरस और सुलझी हुई थी। चर्चा-कला में जितने निपुण थे उतने ही शौकीन भी "राम करे तो हम से अड़े" उनकी उक्ति थी।

एक बार आप साधुओं के साथ विहार करते-करते अजमेर पधारे। आप लोढ़ाजी के घर पर गोचरी गये, रसोइए ने दो फुलके उठाए।

मुनिश्री ने कहा—कुछ कम दो।

रसोइए ने ऊपर देखा—महाराज! आप कम लेनेवाले कौन? यहाँ तो प्रत्येक के लिए दो फुलके व एक कटोरी दाल निश्चित हैं. आप कौन है?

फौजमलजी स्वामी—हम तेरापथी हैं।

रसोइया—अच्छा! तब यहाँ नहीं ऊपर चलो, मुनिश्री ऊपर गए सेठानी ने बड़ी भक्ति व मनुहार पूर्वक वहराया।

मुनिश्री ने जब ऊपर नीचेका यह रहस्य पूछा तो सेठानी ने बतलाया महाराज! क्या करें साधु-संत बहुत आते हैं, अतः हमने सबके लिए दो फुलके और दाल नीचे रसोई मे देना निश्चित कर दिया है। आप लोग तो कोई सी बार आते हैं और आपकी भिक्षा लेने की पद्धति भी सुन्दर और कलामय है।

मुनिश्री के सामने अब यह बात स्पष्ट हो रही थी। जो मुनि अपनी आवश्यकता का संकोच करता है, उसे देनेवाले बहुत है किन्तु लेने की कला चाहिए।

वर्तमान के सम्पुट में

: १५४ :

झूठा प्रदर्शन क्यों करूं ?

झूठै आडम्बर नै उत्तम कदे नही अपनावै।
ओरां रै आभूषण कै नहि कालू हाथ लगावै ॥१६४॥

वाह्यदृष्टि मनुष्य हर बात को आडम्बरपूर्ण साज सज्जा से तोलता है। वह मागकर या भूखे पेट रहकर भी अपना पोजीशन बनाए रखना चाहता है। किन्तु अन्तर्दृष्टि मनुष्य उसको कोई महत्व नहीं देता, वह अपनी यथास्थिति में संतुष्ट रहकर पर वस्तुओं से असपेक्ष रहता है।

संवत् १६४३ मे अष्टम आचार्यश्री कालूगणी जब दीक्षा लेने को बीदासर में मघवागणी की सेवा में उपस्थित हुए तो आपकी दीक्षा की बरनोली (दीक्षा का जुलूस) निकालने की तैयारी की गई। घर की साधारण स्थिति होने से आभूषणों की कोई विशेष चमक-दमक आपके शरीर पर नहीं थी। वहाँ के श्रीमन्त सेठ शोभाचन्दजी ने आपको बुलाकर मोतियो का कंठा पहनाना चाहा किन्तु आप पहनने के लिए अस्वीकार हो गए। सेठजीने बहुत आग्रह किया किन्तु अन्त मे आपने यह कहकर—"कि जब मेरे घर में पहनने को ज्यादा नहीं है तो मैं दूसरों के गहने पहन कर झूठा प्रदर्शन क्यों करूं ?" सेठ साहब के प्रेम भरे आग्रह को टाल दिया।

एक ग्यारह वर्षीय बालक की यह सादगी पूर्ण निर्भीकता ही आगे जाकर तेजस्वी सिद्धान्तवादिता के रूप में निखरी।

: १५५ :

पद के प्रति अनासक्त

निकमी पंचायत में भाई उचित न लागै पड़णो।
तू मैं तो होता नहीं दीसां आपारै के करणो॥१६५॥

पद-लिप्सा की मोहिनी के सामने जहाँ देव और महादेव का धैर्य भी डोल उठता है वहाँ उसकी ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखनेवाले आत्म-गुप्त ऋषियों की कहानी भी हमने सुनी है।

सवत् १६५४ मे जब छठे आचार्यश्री माणकगणि का सहसा स्वर्गवास हो गया तो संघ में एक भयंकर चिन्ता व्याप्त हो गई और उनके पीछे आचार्य कौन होगा, यह विकट प्रश्न भी सामने खड़ा था। तभी उम्मीदवारी के नशे में छके से एक मुनिने मुनिश्री कालूरामजी (कालूगणी) से पूछा—आपके विचारों में कौन ठीक है, मुनिश्री उनकी आत्म-ख्याति की भावना का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर चुके थे। वे चुप रहे।

उनका आग्रह बढता ही गया—नहीं! बतलाओ पीछे कौन योग्य है ? बार-बार के आग्रह का टके-सा दो टूक उत्तर देते हुए मुनिश्री ने कहा—भले ही कोई हो न ? हमे क्या करना है, मेरा और तुम्हारा नाम तो मुश्किल है। फिर क्यों किसी की चिन्ता मे दुबले बनें ? (यद्यपि तभी कालूगणी को आचार्य पद देने की कल्पनाएँ मुनि-वर्ग के दिमाग पर घिर रही थी।)

अहं का खण्डन होते देख वे चुपके से उठकर चले गए। उनकी अधिकारों के प्रति अनासक्ति एवं निस्पृहता का यह रेखाचित्र आज भी चिन्तन की ओर प्रेरित कर रहा है।

: १५६ :

प्रेरणा श्लोक

तनिक इशारे सू भी मोटा झटपट संभल ज्यावै।
एक तुच्छ श्लोक कालू के मस्कृत लगन लगावै॥१६६॥

अपनी कमी और कभी-कभी दूसरों की कमी भी जीवन मे एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने का प्रेरणा स्रोत बन जाती है।

आचार्य श्री डालगणी के साथ श्री कालूगणी तब बीदासर मे थे। वहाँ के ठाकुर हुकमसिंहजी ने आचार्यश्री के पास एक संस्कृत-श्लोक भेजा, जिसका अर्थ पूछा गया था। संस्कृत-ज्ञान की तब यह स्थिति थी कि सब का कोई भी साधु पूरा अर्थ नहीं कर सका, इसका कारण यह भी था कि उस ५६ अक्षरों के एक श्लोक मे लगभग १५, २० अशुद्धिया थी, जिसका अनुभव बाद मे हुआ। श्री कालूगणी को इस कमी से बड़ी झुंझलाहट हुई उनके हृदय में संस्कृत-अध्ययन की जो लगन थी वह एक कसक बन गई और अपनी समग्र शक्ति को बटोर कर वे संस्कृत अध्ययन मे जुट पड़े। आचार्य पद सम्भालने के बाद भी वे एकान्त मे आकर तीन-तीन घण्टा तक एक बालक की तरह चन्द्रिका और सारकौमुदी का सूत्रपाठ घोकाघोक लगाकर रटते रहते। उन्हीं की यह सजीव प्रेरणा आज संघ मे व्याकरण, काव्य आदि की उच्छल तरंगों के रूप मे बोल रही है।

: १५७ :

जेकोबी की जिज्ञासा

जिज्ञासु नहीं बहके चाहे कोई भी बहकावै।
जर्मन को हर्मन जेकोबी देख छटा चकरावै॥१६७॥

दुराग्रही के लिए ससार में कहीं भी सत्य नहीं है। किन्तु जिज्ञासु के लिए हर चरण पर सत्य देवता की मंजुल मूर्ति खड़ी है। असत्य को छोड़कर सत्य की ओर उसकी गति होती है। वह सत्य का ग्राहक होता है।

संवत् १९७० में आचार्य श्री कालूगणी लाडनू में विराज रहे थे। उन दिनों अट्ठारह भाषा विद् सुप्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय जर्मन

विद्वान डा० हर्मन जेकोबी भारत-यात्रा पर आये हुए थे (जैन दर्शन में भी उनकी गहरी रुचि थी। आचारांग और दशवैकालिक का अंग्रेजी अनुवाद उन्होंने किया था उस अनुवाद में आए पुद्‌गल शब्द का माम आदि के रूप में विपरीत अर्थ किया गया है। लाडनूँ में आचार्य श्री के दर्शनार्थ आने के लिए तैयार हुए तब विरोधियों ने काफी बहकाया कि वहाँ गर्मी बहुत पड़ती है, फ्रूट भी नहीं मिलता. बाजरे के रोट खाने पड़ेंगे किन्तु उस भय के सामने भी उनकी तीव्र जिज्ञासा मन्द नहीं पड़ी और उन्होंने लाडनू में आचार्य प्रवर से साक्षात्कार कर ही लिया। पुद्‌गल शब्द के विषय में चर्चा करने के पश्चात् उन्होंने कहा—"मुझे बड़ा दुःख है कि मैं सूत्रों का अनुवाद करने के पहले आपसे नहीं मिल सका। मैंने बड़ी भूल की है अब उसकी दूसरी आवृत्ति में उसे सुधारने की चेष्टा करूँगा। साधु-जीवन की गतिविधि का निकट से परिचय पाकर और तभी होनेवाली एक सम्पन्न युवक-युवती की सपत्नीक दीक्षा देखकर वे अत्यन्त प्रभावित हुए। यात्रा की समाप्ति पर अपना वक्तव्य देते हुए उन्होंने कहा—इस यात्रा में मैंने तीन नए तथ्य देखे हैं जिन्हें मैं कभी नहीं भूल सकता—

१—भगवान् महावीर की शुद्ध श्रमण-परम्परा।

२—पुद्‌गल शब्द का नवीन तथा सही अर्थ।

३—सपत्नीक भागवती दीक्षा।

पंडित की परीक्षा

आछै को संयोग हुवै जद मिलै जोग भी आछो।
रघुनन्दनजी सा मिलणै सूं हो गयो सुपनो साचो ॥१६९॥

संस्कृत में "स्थाली पुलाक" नामक न्याय आता है जिसका अर्थ है एक चावल को देखने पर हाडी के सभी चावलों की परीक्षा हो जाना। विज्ञ की यही परिभाषा है वह एक बात के द्वारा समूचे व्यक्तित्व की थाह पा लेता है और एक श्लोक के माध्यम से पांडित्य की प्रौढ़ता को भाप लेता है।

संवत् १९७४ में आचार्य श्री कालूगणी चूरू पधारे। एक दिन लूका गच्छ उपाश्रय के यति रावतमलजी ने आचार्य श्री के समक्ष चर्चा की, एक ऐसा विद्वान् हमारे यहाँ आया हुआ है जो एक दिन में ५०० श्लोक बना सकता है। आचार्य श्री को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ बोले—दुनिया में ढोंग बहुत चलते है ?

यतिजी—नहीं महाराज! यह तो ढोंग नहीं है। वह तो एक दिन मे हजार श्लोक बना सकता है, मैंने तो पाच सौ ही कहा है, उसका नाम प० रघुनन्दन शर्मा आयुर्वेदाचार्य! २४ वर्ष की छोटी अवस्था मे ही वह आशु कवि बन गया है।

आचार्य श्री ने यह बात प्रत्यक्ष अनुभव से जाननी चाही। दूसरे दिन यतिजी पं० रघुनन्दनजी को साथ लेकर आचार्य श्री के निकट आए। साधारण परिचय के बाद आचार्य श्री ने आशु कविता के लिए उन्हें विषय बताया—

"जीव जीवै ते दया नहीं मरै ते हिंसा मत जाण।
मारण वाला नै हिंसा कही नहीं मारै ते दया गुण खाण॥"

पंडितजी पद्य की भाव और भाषा से बिल्कुल अपरिचित होते हुए भी न झेंपे और न झिझके, तुरन्त पद्य में इसका अनुवाद कर दिया।

"न जीव जीवने दया मृते न किं च पातकम्।
सुघातकस्य पातकं त्व मारणे दयास्थिता"॥

आचार्य श्री को उनकी प्रतिभा की स्फुरणा और कवि-कर्म की सरसता परखते देर नहीं लगी, और इधर पंडितजी ने भी उनके महिमामय व्यक्तित्व और सच्ची साधुता के प्रति अपने आपको समर्पित कर दिया। दूसरे दिन तीन घण्टा मे "साधु शतकम्" नाम का लघु काव्य बनाकर लाये जिसमें पहले दिन की भेंट मे जानी गई साधु की आचार-विधियो का दिग्दर्शन था। उनके सहयोग से साधु-संघ में संस्कृत-विद्या का विकास होने लगा और यह मानना चाहिए कि उन्हीं की निष्काम सेवा परायण वृत्ति के जल सेक से संस्कृत-विद्या का सूखा वृक्ष लह-लहाता देखकर आचार्यवर का स्वप्न साकार हो उठा।

: १५६ :

अभय को भय नहीं !

प्लेग चलै है तो भी सेवा करणी हक आपाको।
श्रद्धाशील व्यक्ति को कबही बाल न होवै बाको ॥१६९॥
मुनि अवहेला करणी भाखर सू मच भेड़ी।
सारो गाम उतरयो पाटै बची प्रजापत मेढी ॥१७०॥

संसार में उन मनुष्यों की कमी नहीं है, जो भय की कल्पना मात्र से सिहर उठते हैं। भय को समक्ष देखकर तो वे विक्षिप्त से बन जाते हैं। धर्म, कर्म विनय सभी कुछ भूलकर जैसे वे आत्मरक्षा के लिए विकल हो उठते हैं, किन्तु ऐसे डरपोक व्यक्ति कभी सुरक्षित नहीं रह सकते। रक्षा उन्हीं की होती है जो भय को देखकर उसके सामने डट जाए, दृढ़ श्रद्धा और आत्म-विश्वास का बल लिए।

सवत् १९७४ की महामारी की प्रलयंकारी कथा आज भी कहीं बुजुर्गों के मुंह सुनते है तो रोमाच हो उठता है। वृक्ष के सूखे पत्तों की तरह मनुष्य झड़ रहे थे। लाडनू में संवत् १९१४ से वृद्ध व रुग्ण साध्वियों का स्थिर वास रहा है; जहाँ की आदर्श सेवा गंगोत्री मे नहाकर मानवता उजली हो रही है। सवत् १९७४ की महामारी का प्रकोप वहाँ पर भी उग्र रूप में था। अपनी जान बचा-बचाकर कोई सैंकड़ों परिवार वाहर

दूर-दूर जाने लगे। ओसवाल समाज के करीव ६०० घर होंगे जिनमें २७, २८ घर रहे बाकी सब गांव छोड़कर चले गए। वृद्ध व अपंग साध्विया कही जा नहीं सकती थी। कुछ साध्विया उनकी चाकरी मे थी, यों कुल २१-२२ साध्वियाँ वहाँ थी। २७-२८ घरो ने यह निश्चय कर लिया कि साध्वियों को छोड़कर हम कहीं नहीं जायेंगे, जो होगा सो देखा जाएगा।

संयोग की वात, कई जयपुर जाकर, कई अजमेर और कई आगरा तक जाते-जाते प्लेग के शिकार हो गए, किन्तु वहाँ स्थिर रहनेवाले घरो मे किसीके एक छोटे बच्चे का भी वाल बाका नहीं हुआ। उनके आत्म-विश्वास व दृढता का यह चमत्कार आज भी इतिहास के उजले पन्नों पर लिखा हुआ है।

× × +

इसी संदर्भ में एक वात और है कि कुछ साध्वियां मारवाड़ से विहार करके मेवाड़ जा रही थीं। असींद पहुँची तो वहाँ के रावजी ने साध्वियो को गाव मे नहीं आने दिया चूकि ये साध्वियाँ मारवाड़ से आ रही थी और वहाँ महामारी का ताडण्व हो रहा था। साध्विया उस चिलचिलाती धूप मे आगे की ओर चल पड़ी, किन्तु रावजी की दुर्बुद्धि जो थी आगे के गाँव (दोलतगढ़ आसींद के वीच) में भी आदमी को भेजकर यह घोषणा करवादी कि—"ये साध्वियाँ आ रही है इन्हें गाँव में ठहरने न दिया जाए, नहीं तो मारवाड़ से वीमारी लेकर

आई हैं सो यहाँ फैला देगी, साध्वियाँ समूचे गाव में घूम आई पर कहीं भी ठहरने को स्थान नहीं मिला। गाव के बीच एक कुंभकार का घर था उसने हिम्मत की, रावजी के आदेश की परवाह नहीं करके आग्रह और भक्तिपूर्वक अपनी झोंपड़ी में ठहरने का विनय किया।

साध्वियाँ—रावजी फिर कुछ कहेंगे तो ?

कुम्भकार—कहकर क्या करेंगे ? यह झोंपड़ी, मिट्टी के बर्तन और गधा है सो रावजी रुठेंगे तो इन्हें लेकर वे खुशी मनालें।

साध्वियाँ उसके आत्मबल पर चकित हुई, वहाँ ठहरी, बाद में दौलतगढ़ के ठाकुर व श्रावक लोगों के आग्रह पर साध्वियाँ दौलतगढ़ चली गई। पीछे से उस गाव में आग लग गई और लगी भी इस विचित्र ढंग से कि गाँव के बीच में कुम्भकार के एक घर पर तो आंच भी नहीं लगी और कोई बचा नहीं।

देखने सुननेवालों ने आत्मबल और सच्ची भक्ति की साधना पर इस घटना को दैवी प्रसाद जाना।

: १६० :

मूक वात्सल्य

गुरुवा की वत्सलता ही प्रेरक वणज्या प्रियकारी।

लड़ा लुय होगी थोड़े में विद्या की फुलवारी ॥१७१॥

गुरु का वात्सल्य ही शिष्य-समुदाय मे जागृति और नव निर्माण के रंगमंच का मुख्य सूत्रधार होता है। गुरु-वात्सल्य की खाद पाकर शिष्य का उर्वर मानस नित नई पौध लगाता रहता है।

यह बात संवत् १९७५ की है जब पं० रघुनन्दनजी के सहयोग से साधुओं में संस्कृत-ज्ञान का आदि पर्व चल रहा था। मुनि श्री सोहनलालजी (चूरू) ने तीन श्लोक लिखकर आचार्य प्रवर के चरणों मे उपस्थित किए। श्लोक देखते ही आचार्य वर की आखो मे जैसे अमृत भरा उल्लास उमड़ पड़ा। आचार्य श्री ने कहा—परिषद् मे खड़ा होकर सुना। सुनने के बाद आचार्य श्री बारम्बार बड़े गौर से देखने लगे—जैसे उनकी कल्पना सजीव होकर उतर आई हो। आचार्य वर का यह विद्यानुराग और वात्सल्य भरी प्रेरणा ही संघ में संस्कृत-रचना के अमर संस्कार जगा गई, जो उन्हीं के सामने पूर्ण प्रवुद्ध भी हो उठी—भिक्षु शब्दानुशासन जैसे १८ हजार पद्य प्रमाण महा व्याकरण, व अनेक संस्कृत के लघु काव्य धड़ाधड़ बनाकर मुनि गण लाने लगे। किन्तु इस युगधारा के वे तीन आदि श्लोक आज भी आचार्यवर के मूक वात्सल्य की कहानी सुना रहे है।

: १६१ :

चमत्कार नमस्कार

चमत्कार नै नमस्कार होवै आ रीत पुराणी।
गोलै को रोलो माच्यो जद समझी तुरत भिवाणी ॥१७२॥

कालूगणी ने संवत् १६७७ के भीवानी चातुर्मास में जब दीक्षा देने की घोषणा की तो कुछ साम्प्रदायिक तत्त्वों ने दीक्षा रोकने के लिए भयंकर विरोध उभाड़ दिया। गली-गली और घर-घर मे जाकर दीक्षा के विरुद्ध जनता में जोश भरना चाहा। यहाँ तक कि उनका नारा था—३६ हजार की जन-संख्यावाले इस शहर में जब तक एक भी व्यक्ति जीवित रहेगा, दीक्षा नहीं होने देगा।

दीक्षा के पूर्व, रात को सार्वजनिक सभा हुई। जनता की बहुत बड़ी भीड़ को बरगलाया जा रहा था कि दीक्षा नहीं होने देंगे। सहसा सभा मे भगदड़ मच गई कि मिनटों मे ही सभास्थल बिल्कुल शून्य बन गया।

किसीने कहा—आकाश से एक धोलागोला गिरा। किसी ने कहा—एक बछड़ा आसमान से जमीन पर उतरा, और किसी ने कुछ……।

प्रातः पूर्व निश्चित स्थान पर दीक्षा समारोह आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ। विरोध करनेवाली कोई चिड़िया भी सामने नहीं आई।

देखने सुननेवालों ने इसे आचार्यवर के तपोबल का दैवी चमत्कार माना। और सुननेवालों ने यह जाना कि सचाई के सामने झूठ स्वयं कपूर की तरह उड़ जाती है।

: १६२ :

पिस्तौल गिर पड़ी

पुण्यवान नैं देख विरोधी हो ज्या पाणी पाणी।
मारणियो भी पड्यो पगां पिस्तौल रह गई ताणी ॥१७३॥

गुजरात में एक कहावत है—"जे ना जोया न थी मरै तेना मोख्या सुं मरै" महान् आत्मा की तेजस्विता व तपोबल उनके चेहरे पर छाया रहता है जिनके दर्शन मात्र से ही दुष्टों और हिंसकों का हृदय बदल जाता है।

श्री कालूगणी का संवत् १९७९ का चातुर्मास बीकानेर में था। वहाँ का विरोध तब तक के इतिहास में पहला था,

निकृष्टता तो इसी से स्पष्ट हो जाती है कि वहाँ मनुष्य मनुष्य का ही नहीं परन्तु आप जैसे महापुरुषों के खून का प्यासा बन गया था।

एक दिन आप शौच के लिए बाहर पधारे हुये थे कि सहसा एक विशालकाय भयावना मनुष्य हाथ में पिस्तौल थामे उनके सामने आ डटा! पिस्तोल का घोड़ा दागने को ही था कि—उनके तेजोमय ललाट और मनोरम मुखारविन्द को देखते ही शरीर धूज उठा पिस्तोल हाथ से गिर पड़ी! शरीर पसीना-पसीना हो गया और चरणों में आकर झुक गया।

मेरा घोर अपराध क्षमा करो प्रभु!—उसकी आँखें डबडबा आयीं।

क्या बात है किस लिए आए हो?

प्रभु! मैं चन्द चांदी के टुकड़ों के लिये यह अत्याचार करने पर उतारू हुआ, परन्तु आपका चमचमाता ललाट देखकर मेरे हृदय में अपूर्व श्रद्धा जाग उठी। भगवान् की इस जीवित मूर्त्ति पर मैं हत्यारा पापी पिस्तोल चलाऊँ? इतना कमीना मैं नहीं! वह रोता हुआ बारम्बार चरणस्पर्श करने लगा।

वे क्षमा श्रमण थे। पापी भी वहाँ क्षन्तव्य था, पर इससे भी बड़ी क्षमा उनकी यह थी कि इस घटना की चर्चा अपने श्रावकों से तो क्या बहुत दिनों तक तो साधुओं से भी नहीं की। सच तो यही है, उनकी महानता का तोल जो समुद्र से तोला जाता है।

: १६३ :

स्पष्टोक्ति

खरो खरी बेधड़क सुणाकर सीधो पकड़ै पूछो।
चांदी की जूत्यां मिनखां नै नहिं देखण दै ऊंचो ॥१७४॥

सत्य कड़वा अवश्य होता है पर अन्त मे हितकारी होता है। कटु सत्य के दर्शन वही करा सकता है जो उसको पचा गया है। सत्यद्रष्टा और सत्यात्मा की स्पष्टोक्तियों के प्रकाश मे जीवन की तहें खुलती है।

एक बार बीकानेर राज्य के आई० जी० पी० किसी विशेष कार्यवश कालूगणी की सेवामे उपस्थित हुए। पूर्वपक्ष के प्रभाव मे आने के कारण आई० जी० पी० साहब का रुख कुछ बेढगा सा बना हुआ था। आचार्यवर ने उनकी कर्त्तव्य-हीनता पर चोट करते हुए जागरूक किया—

सुण हाकम सग्राम कहै आधो मत हुवै यार।
ओरा रै दो आंख है थारै चाहिजै च्यार॥

और फिर "आदमी को चादी की जूती लगने पर ऊपर नहीं देखने देती। शासक को विवेक से काम लेना चाहिए"। यह सुना तो आई० जी० पी० साहब बंगले झांकने लगे। कुछ देर के बाद क्षमा मागकर चले गए।

झूठ कौन बुलवाता है ?

खुद नै पच सू धोया समझै टोपी ओर बतावै।
पूछै प्रभुवर कहो नाजमजी! झूठ कवण बुलवावै ॥१७५॥

एक दिन न्याय सत्य-रक्षा के लिए बना था पर आज न्याय स्वयं इतना जटिल बन गया है कि वहाँ सत्यासत्य का विवेक न होकर प्रमाण की खोज होती है, और प्रमाण के आधार पर असत्य को भी प्रतिष्ठा दे दी जाती है।

एक बार आचार्य वर कालूगणी से वातचीत के प्रसंग में एक नाजिम साहब ने निवेदन किया—आपके श्रावक गवाह देने में झूठ बहुत बोलते हैं।

आचार्य श्री कालूगणी ने कानून के चक्रव्यूह को भेदते हुए कहा—आप बुलवाते हैं तभी तो बोलते हैं न! सो कैसे? नाजिम ने चौंककर कहा।

आप लोगों के न्याय का ढंग ही कुछ ऐसा अटपटा है, गवाह से पूछते हैं—चोर का मुंह किधर था, कितने गज की दूरी पर था, कमीज का रंग कौनसा था, कितने हास्यास्पद एवं असनोवैज्ञानिक प्रश्न हैं? जिसका माल चोरी जाता है वह चोर पकड़वाने की धुन में रहता है या अदालती पेचों की?

नाजिम साहब ने सत्य को स्वीकार करते हुए कहा—हाँ महाराज! न्याय-व्यवस्था कुछ ऐसी ही है।

: १६५ :

नेम निभाणै धर्म ठिकाणैं

नेम निभाणै धर्म ठिकाणै आपे ही हो ज्यासी।
चोरासी में गुणराशी इम खासी बात प्रकाशी ॥१७६॥
आपा नैं के चिंता भाई पतली जिणरी फूटै।
आखिर हाथ मसल पछतावै लाग्या झगड़ै झूठै ॥१७७॥

परिस्थितियों की भयंकरता के सामने आत्म-विश्वास की हीनता से कुछ व्यक्ति घबरा उठते है, किन्तु महापुरुष जो होते है उनके सामने यह एक लघु नाटिका के दृश्य के सिवा और कुछ नहीं होता उनका आत्म-विश्वास जागृत रहता है। "सत्यमेव जयते" ही उनका नारा होता है।

सवन् १९८३, ८४, ८५ मे थली प्रदेश के ओसवाल समाज मे देशी विलायती का एक भीषण विग्रह चल रहा था। जिस कारण घर-घर ईर्ष्याद्वेष की आग धधकने लग गई जिसके फफोलों के कुछ दाग आज भी समाज की छाती पर विद्यमान हैं। बहुत से व्यक्ति आचार्यवर के निकट आते और भय खाते-खाते बोलते अमुक के ऐसा होने से ऐसा हो जाएगा, अमुक ऐसा कर देगा।

कालूगणी का एक ही उत्तर होता—तुम क्यों घबराते हो? जिसकी पतली होगी उसकी फूटेगी—हम सच्चे हैं तो हमारी सच्चाई को कोई खतरा नहीं हो सकता और अंत में उनका आत्म-विश्वास का साकार सूत्र निकलता "नेम निभाणै धर्म ठिकाणै" अपने आप हो जायेंगे।

वास्तव मे उनके आत्म-विश्वास का ही चमत्कार था कि उन खतरनाक परिस्थितियों में भी संघ पर कोई आंच नहीं आ सकी।

तुच्छ शब्द

तुच्छ मनुज ना कुच्छ ज्ञान पर झूठो रोष जमावै।
किन्तु तुच्छ की व्याख्या पूछ्या माथो चक्कर खावै ॥१७८॥

"अल्प विद्यो महागर्वी" की उक्ति प्रायः असत्य नहीं निकलती। संस्कृत का थोड़ा-सा ज्ञान पानेवाला यह समझ बैठता है कि उसने समूचे वाङ्मय को ही आत्मायत्त कर लिया है। किन्तु सच्चे विद्वान् के सामने उसका यह मान चूर होते भी देर नहीं लगती।

एक नौसिखिया व्याकरणाचार्य श्री कालूगणी के पास आकर अपनी शेखी बघारने लगा—मैंने पाणिनीय का अध्ययन किया है वह सर्वोत्कृष्ट व्याकरण है।

कालूगणी—हाँ ठीक है! व्याकरण सुन्दर है।

एक भी ऐसा शब्द नहीं जो पाणिनीय से सिद्ध हो नहीं सकता हो—वह अपने अभिमान पर फूल रहा था।

पंडितजी! तुच्छ शब्द किस सूत्र से सिद्ध होता है—कालूगणी ने पूछा पंडित ने सूत्रों को खूब उलट-पुलट के याद किया पर आखिर "रेवडी का नाम गुलसप्पा" और तभी कालूगणी की शिक्षा मुखर हो उठी—विद्या का अभिमान कैसा? सम्पूर्ण ज्ञान किसको हो सकता है?

: १६७ :

पंडित कौन ?

ज्यादा बोल्यां पंडित कम बोल्या नहि मूरख जाणां।
खरी सीख सुणकर कालू की पंडित जी शरमाणा ॥१७९॥

जहाँ विद्वत्ता होती है वहाँ सागर-सी गम्भीरता होती है, जहाँ गम्भीरता होती है वहाँ सोने की नाई ध्वनि कम होती है।

पंडिताई के नशे में चूर एक विद्वान कालूगणी के निकट आए बात चल रही थी कि प्रसंगवश मुनिश्री सोहनलालजी ने एक जिज्ञासा की रघुवंश के इस श्लोक में—"कथां द्वयेपामपि मेदिनी भृताम्" द्वयेषां" का प्रयोग कैसे हुआ ? और उसकी व्याकरण की दृष्टि से संगति कैसे बैठ सकती है ?

पडित ने उसे अपनी विद्वत्ता की परीक्षा के रूप में समझा, तुरन्त उनका वाग् वैदग्ध्य चोट खाए साप की तरह फुकार उठा। धाराप्रवाह संस्कृत में बोलते ही गए, उन्हें रुकते नहीं देखकर कालूगणी ने बीच ही रोका पडितजी! मैं बहुत बोलने वालो को पंडित नहीं मानता और न ही कम बोलनेवाले को मूर्ख।

सुनते ही पंडितजी का चेहरा फक्क हो गया। उस समय वे चले गए किन्तु उनके मन की हलचल ने रात भर शान्ति नहीं होने दी। दोपहर में दर्शन किए और २१ श्लोक बनाकर लाए वे सुनाए जिनमे खास श्लोक यह भी था—

"सायंतने गत दिने भवदीय शिष्यै,
साकं विवाद - विषयेऽत्र यते! प्रवृत्ते
यद् किंचिदल्पमपि जल्पितमस्तु कोष्णं
क्षन्तव्यमेव भवता कृपया परेण"—१

(कल शाम को आपके शिष्यों के साथ जो गर्मागर्म विवाद हुआ उसके विषय में क्षमा चाहता हूँ कृपा करके क्षमा करें)।

आचार्य चरणों में यों क्षमा-याचना करके उन्होंने विद्वत्ता की सही कसौटी बतादी।

: १६८ :

आत्मीयता का अमृत

निर्धन धनिक एकसा वरतै उत्तम नर मरदानो।
वत्सलता सूं तुरत दिखायो गधै वालो पानो ॥१८०॥

महापुरुषों के हृदय मे आत्मीयता व स्नेह का अमृत रहता है जिसे पाकर छोटे-बड़े सभी धन्य हो उठते हैं। उनके सामने छोटे-बडे का प्रश्न ही नहीं रहता। वे सभी के साथ मधुर व्यवहार करते हैं "जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ" की आगम-वाणी उनके जीवन में चरितार्थ होती है और यही तो उनकी महानता की कसौटी है।

कालूगणी एक बार मारवाड मे विहार करते-करते पंचभदरा पधारे। कधे पर जेड़ लिए, शिर पर दुमाला बाधे, और मेले से फटे पुराने कपड़ों से सिमटा एक किसान आचार्यश्री के सामने आकर बार-बार निहारने लगा—आचार्य वर ने उसकी जिज्ञासा को देखते हुए पूछा—क्या बात है ? किस लिए आए ?

किसान हर्षोत्फुल्ल होता हुआ बोला—महाराज ! उवो पानो देखाणो ?

आचार्य श्री ने अपने पुट्ठे मे से निकाल सूक्ष्माक्षरों का वह हस्तलिखित पत्र निकाला जिसके दोनो ओर लगभग अस्सी हजार के करीब अक्षर लिखे हुए थे।

किसान उलट-पलट कर देखने लगा पर उसे कोई रस नहीं आया। उसकी भाव-भंगिमा को पढते हुए आचार्य वर ने पूछा—क्यों देख लिया ? किसान निराशा की आह भरता हुआ बोला—महाराज ! यह नहीं वह गधेवाला जिसमे एक गधा खो गया है और कुम्हार उसे खोजता है।

देखने सुननेवाले उसकी ऋजु जड़ता पर हंस पड़े किन्तु वे महामहिम आचार्य देव तो उस किसान की आत्मा को समझ चुके थे। चित्र निकाल कर आचार्यवर ने किसान के हाथ में दिया तो उसकी आत्मा प्रसन्न हो पड़ी। वह उस महान् व्यक्तित्व के प्रति मूक श्रद्धा से गद्गद् हो उठा।

: १६६ :

दण्ड माफ नही होगा

नीति रीति में रख पख राख्या काम मिसल सब ल्यावै।
दण्ड माफ नहीं होण सकै हैं काल्‌ साफ सुणावै ॥१८१॥

आचार्य 'धर्माधिकारी' होते हैं। धर्म-शासन में न्याय की सर्वोच्च सत्ता वहीं पर केन्द्रित होती है। किन्तु उन्हें भी दोष का प्रायश्चित्त देने का अधिकार है दोष को माफ करने का नहीं। चूंकि वहाँ प्रायश्चित्त आत्म-साक्षी से होता है और होता है आत्म-शुद्धि के लिए, सब माफ का प्रश्न नहीं आता स्वीकार का महत्त्व माना जाता है और इसीमें धर्म-संघ और धर्माचार्य की उर्जस्विता है।

एक वार लाडनूं में ऋषिरामजी नामक एक मुनि ने व्याख्यान के बीच आगम विरुद्ध बात कह दी। तत्त्व-जिज्ञासु श्रावकों ने जब इसका समाधान मागा तो वे विवाद मे और अधिक उलझ गए। दूसरे दिन सैंकड़ों श्रावक व ऋषिरामजी सुजानगढ़ आए और कालूगणी के समक्ष यह प्रश्न उठा। ऋषिरामजी ने अपनी सफाई दी—मेरा आशय तो यह नहीं था।

कालूगणी—आशय भले ही कुछ रहा हो किन्तु जो प्रतिपादन किया गया है वह बिल्कुल आगम विरुद्ध है। इसलिए कड़े उपालम्भ के साथ प्रायश्चित्त के रूप मे तुम्हें ५१ परठना दिया जाता है।

हजारों दर्शक सन्न रह गए इतने वडे योग्य मुनि को यह उपालम्भ ! यह दंड।

मुनि ने आचार्य वर के समक्ष पुनः विनय कर, अपनी भूल पर पश्चाताप करते हुए दण्ड माफ करने का आग्रह किया।

हृदय मे वही वात्सल्य और आखों में वही स्नेह लिए आचार्य श्री ने कहा—मेरे मन मे तुम्हारे प्रति वही भाव है जो पहले था किन्तु जिम्मेवारी के नाते मैंने जो दण्ड दिया है उसे मैं माफ नहीं कर सकता। उसे माफ करने का अर्थ हुआ मैं स्वयं उतने ही प्रायश्चित्त का अधिकारी हूँ।

आचार्य श्री की उज्ज्वल नीति और आदर्श न्याय-पद्धति पर सहस्रों मानस साधुवाद दे रहे थे।

दीक्षा के दो तीन दिन बाद ही बालक साधु भयंकर रोग के शिकार हो गए। ज्यों-ज्यों उपचार चला बिमारी बढ़ती गई किंचित्-सा छूने पर ही सास फूल जाता दम घुटकर बेहोशी छाजाती। नगर के अनेक डाक्टर, हकीम आए परन्तु रोग का प्रतिकार नहीं हो सका।

चातुर्मास समाप्त होने पर कुछ सन्तों को उनकी सेवा में रखकर आचार्य प्रवर ने विहार कर दिया। मगनलालजी स्वामी से कहा—आपने बहुत से उपचार करके देख लिए अब एक दवा मेरी भी करना—सब दवाएं बन्द करके इसको सुबह घुमाने के लिए बाहर ले जाया करो आते समय झोली मे कुछ धूल भरकर उठवाकर आया करो यदि बेहोश हो जाय तो वहीं पर सुलाकर होश आने पर फिर धीमे-धीमे चलाकर ले आना।

सुननेवालों को बहुत ही अटपटा लगा, यह कैसे हो सकता है ? जिसका हिलते ही सास फूलता है वह क्या घूम सकेगा ?

किन्तु विश्वास पूर्वक यह क्रम शुरु किया गया। धीरे-धीरे रोग मिटता गया शरीर में शक्ति आती गई और थोड़े ही दिनो मे मुनि पूर्ण स्वस्थ हो गए। तब जाकर आचार्यदेव की वाणी पर चरण थमे कि:—घूमना भी दवा है और श्रेष्ठ दवा है।

: १७१ :

खाकर के उजवाला

सिरो दाल रो दोय सेर जो मास पारणै नायो।
"आशा" आशा सफल हुई सब काम बाजकर आयो ॥१८३॥

शरीर पोषण के लिए खानेवाले बहुत है किन्तु खाकर गाय के दूध की तरह तपस्या के रूप मे उसको उजवालने वाले विरले होते हैं। वास्तव मे उन्हीं को लेकर मारवाड़ में यह उक्ति प्रसिद्ध है "चारू हारू नहीं होता।"

मुनि श्री आसारामजी वालोतरा (मारवाड़) के थे कभी-कभी वे अपने गृहस्थपन के संस्मरण सुनाया करते थे कि अपने क्षेत्र मे मन के तेरिये (यानि १३ व्यक्ति मन घी खा लेते) कह लाते थे, एक वार वहाँ के हाकिम ने हमें बुलाकर कहा—मैं उन मन के तेरियों को देखना चाहता हूँ।

मैंने कहा—अब तो कुछ छुटपन आ गया है सो तेरिये कहाँ, नौ ही रह गए है। वात हाकिम साहब के गले नहीं उतरी वहीं पर उन्होंने पाँच सेर घी मंगवाया और मैंने पीकर वर्तन खाली करके रख दिया।

पाँच हजार रुपये कलदार (१ मन २२॥ सेर वजन) कन्धों पर लेकर तीन कोस चले जाते थे। एक बार बीदासर में आचार्य श्री कालूगणी के दर्शन करने आए। एक मास की तपस्या के पारणे में आचार्य श्री गोचरी पधारे किन्तु उनके पारणे की सामग्री को देखकर तो सभी चकित रह गए; दो सेर करीब दाल का हलुआ और कुछ तेल के बड़े।

आचार्य श्री के विस्मय को देखते हुए उन्होंने कहा— गुरुदेव! मेरी तपस्या का तो यही पारणा होता है। यदि मैं ऐसा न खाऊं तो तपस्या कैसे हो?

संवत् १९८९ मे चाड़वास मे उन्होंने सुदीर्घ संलेषणा (५८दिन की तपस्या करने के बाद आजीवन अनशन कर दिया।

मुनि श्री सोहनलाल जी (चूरू) आदि कुछ संत बीदासर से कालूगणी का यह पद्यमय संदेश लेकर उनके पास गए।

"आशा तुम आशाफली संथारारी साच
दृढ़ मन अधिक देखावजे रहे भिक्षुगण राच"

जब यह पद्य उन्होंने सुना तो उनके रोम-रोम नाच उठे बोले—गुरुदेव से निवेदन करना—जब मैंने खाने मे कभी पीछे पैर नहीं दिए, तो अब इसको उजवालने का समय आया है, आप निश्चिंत रहें।

तपस्या और संथारे के कुल ७३ वें दिन बड़े ही शुभ और समाधिपूर्ण भावों मे उनका पंडित मरण हुआ।

भाषा-समिति (बोली का विवेक)

सावधान भाषा में रहिणो जन्म घुटी आ म्हानै।
बोली में पकड़ण खातिर तो करो परिश्रम क्यानै ॥१८४॥

वचन एक कला है और एक ऐसी कला है जिसके पद-पद पर बंधन के गर्त भी खुले पड़े हैं और मुक्ति के द्वार भी। यदि विवेक पूर्वक इसका उपयोग न किया जाए तो मनुष्य अपनी बात में अपने आप बंध जाता है। इसलिए साधु की भाषा विवेक पूर्ण होती है।

संवत् १९८५ में मुनिश्री चंपालालजी (मीठिया) मुनिश्री सोहनलाल जी (चूरू) आदि ११ संतों ने सरदारशहर में चातुर्मास किया। वहीं पर स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य जवाहरलालजी भी थे। आश्विन मास में उदयपुर के कोठारी बलवन्तसिंह जी और रतलाम के वर्द्धमानजी पीतलिया आदि सरदारशहर आये हुए थे सो वहाँ साधुओं के दर्शन करने आए।

बातचीत के प्रसंग में उन्होंने तीर्थ के प्रश्न पर चर्चा करनी चाही तो मुनि श्री सोहनलालजी ने कहा—इसके लिए आज समय कम है २-३ घण्टे का समय लेकर बातचीत होनी चाहिए। आचार्य जवाहरलालजी ने इस बात पर कटाक्ष

करते हुए कहा—"यह तो सिर्फ १५ मिनट का प्रश्न था सम्भवतः उनके पास कोई जवाब न होने से उन्होंने बहाने बाजी करली है।

दूसरे दिन उनका जमघट फिर लग गया। प्रश्न होने के बाद जब मुनि श्री सोहनलालजी उत्तर देने लगे तो वे लोग लिखने को तैयार हुए। मुनिश्री ने टोकते हुए कहा-आप यहाँ नहीं लिख सकते।

क्यों?

क्यों का तो फिर एक अलग प्रश्न हो जाएगा?

इस प्रकार कुछ देर वाद-विवाद होने पर मुनिश्री ने कहा—कल मैंने तीन घंटे के लिए कहा उस पर तो कटाक्ष किया गया पर आज करीब आध घंटा अन्दाज हो गया है। अभी तक तो प्रश्न पूरा उठा भी नही है। बीच ही मे पीतलिया जी घड़ी देखकर धीरे से व्यग की भाषा में बोले—हाँ २६ मिनट हो गए हैं।

मुनि श्री—२५ मिनट होते या ३५ मिनट होते तब भी कोई हर्ज नहीं था मैंने करीब और अन्दाज दो शब्द इसीलिए कहे है। इस विषय की तो हमे जन्म घूँटी भी यही दी जाती है कि "भाषा-समिति में विचार कर बोलो" तो आप पकड़ने की आशा से.. ।

पीतलियाजी—हाँ, भाषा की सावधानी तो आप लोगों में विशेष ही है इसमें कोई शक नहीं।

: १७३ :

तीन से तेतीस

है तपस्या को काम कठिन इण में हाड़ां पर बाजै।
पण जद भाव बढ़ै तो झटपट जाझो महिनो साझै ॥१८५॥

मन जब सधता है तो दुष्कर भी सुकर बन जाता है, असाध्य भी साध्य बन जाता है। कभी-कभी बढनेवाले पैर त्वरित गति से चल पड़ते हैं, एक दिन का उपवास नहीं करने वाले भी तेतीस दिन की तपस्या कर लेते है।

संवत् १९८८ की बात है। कालूगणी का चातुर्मास बीदासर था। मुनि श्री कुन्दनमलजी आचार्य श्री की सेवा मे ही थे, (नव दीक्षितों मे कुशल कुम्भकार की तरह डाले गए सुसंस्कार के रूप में आज भी उनकी आत्मा बोल रही है। सूक्ष्म लिपि-कर्त्ता के इतिहास में आज भी वे जीवित हैं।

चातुर्मास मे मुनि श्री सुखलालजी ने साधुओं मे पचरगी करवाने का बीड़ा उठाया। पचरंगी मे उपवास से लेकर पंचौले तक ५-५ क्रम होते है। पचरगी का पूरा क्रम बैठने मे एक तेले की कमी थी। मुनि श्री कुन्दनमलजी को तेले के लिए मनाया जाने लगा किन्तु उनका उत्तर था मेरा विचार नहीं है, नहीं हो सकेगा और बिना एक तेले के पूरा का पूरा क्रम टूट रहा था, आखिर आचार्य श्री के फरमाने पर मुनि श्री तेला करने के लिए राजी हो गए। तेला सम्पन्न हुआ। पचरगी के पारणे होने लगे। मुनि श्री कुन्दनमलजी आए और मुनि श्री सुखलालजी से कहा—तेला तो ठीक हुआ है, मेरा मन भी प्रसन्न है कहो तो आगे बढू।

प्रेरणा और सहयोग पाकर वे धीमे-धीमे बढते गए। ४, ५, ६ करते-करते तेतीस दिन की तपस्या पर विश्राम लिया। मन के इस विचित्र कार्य पर स्वयं वे भी चकित थे। जो एक तेला करने के लिए राजी नहीं था वह मै तेतीस दिन की तपस्या कैसे कर बैठा ?

: १७४ :

आत्मोत्सर्ग

सचमुच में ही है महा मुश्किल प्रण पर खरो उतरणो ।
संयम रत्न लेण रतनी ज्यू बिरला जाणै मरणो ॥१८६॥

संस्कृत की सूक्ति है—"कार्यं साधयामि उता हो देहं पातयामि" मनस्वी पुरुष के सामने लक्ष्य-सिद्धि के दो ही सूत्र होते हैं—कार्य-सिद्धि या प्राण-त्याग। उत्साह का रक्त उनकी नस-नस में सना रहता है। लक्ष्य के लिए मर मिटना वे अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं। प्राण से बढ़कर भी उनके लिए "प्रण" लक्ष्य का उद्देश्य होता है।

संवत् १९८९ की बात है फतेहपुर (शेखावाटी) में मंगलचंद जी दूगड़ की पुत्रवधू रतनीबाई ने संसार से विरक्ति पाकर साधु-व्रत लेने की अपनी इच्छा प्रकट की, घरवालों ने इसका तीव्र विरोध किया। आचार्य श्री कालूगणी के समक्ष बहन ने अपनी मनोभावना व्यक्त की, किन्तु आचार्य वर के सामने स्पष्ट बात यह थी कि वे बिना परिवार की लिखित आज्ञा (आज्ञा पत्र) के किसी भी मूल्य पर दीक्षा नहीं दे सकते थे।

घरवालों की अकड़ और दमन-नीति में क्रमशः कठोरता

आने पर वहन ने सत्याग्रह कर दिया कि जब तक मुझे मेरे आत्म-कल्याण के लिए आज्ञा नहीं दी जाएगी तव तक आहार परित्याग करती हूँ।

सत्ता और स्वातन्त्र्य की लड़ाई छिड गई, जिसमे एक ओर मिथ्या अधिकार का दर्प भभक रहा था तो दूसरी ओर श्रेय-साधना की वेदी पर आत्मोत्सर्ग की अमर प्रेरणा छलक रही थी। रतनी बाई के अनशन के काफी दिन निकल गए पर घरवाले झुके नहीं। गाव मे और क्षेत्र मे हलचल मच गई। पत्रों मे सनसनी खेज टिप्पणिया निकलने लगी और देखते-देखते अनशन के ७१ वें दिन उसने आत्म-कल्याण के लिए किए जाने वाले इस धर्म यज्ञ मे अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। आत्म-साधना की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए परिवार की अनधिकार पूर्ण नीति के समक्ष एक सवल चुनौती के रूप मे किया जाने वाला यह वलिदान आज भी इतिहास के पृष्ठों पर वोल रहा है।

महात्मा गाधी के समक्ष जब इस प्रसंग को एक प्रश्न के रूप मे रखा गया तो गाधीजी ने अपना समाधान दिया— "न तो गुरु दोषी हैं क्योंकि उन्होंने अपने अस्तेय व्रत को अच्छी तरह निभाया और न वह वहन ही—चूकि वह स्वयं सावालिग थी और अपने हित के लिए संघर्ष करने का उसे पूरा अधिकार था किन्तु घरवालों को इतनी जवरदस्ती नहीं करनी चाहिए थी, यह अन्याय था।"

: १७५ :

आग्रही की हार

अतो पतो नहीं राखै पूरो जो निकमो अड़ ज्यावै।
वहां हठीला हठ छोड़ै पर आखिर मुंह की खावै ॥१८७॥

मनुष्य हठ और आग्रह के वश में होकर कभी-कभी अपने अज्ञान से स्वयं हार जाता है और जब तक उसे कोई समझाने वाला न मिले तब तक स्वयं को ज्ञानी मानने का अज्ञान का पर्दा नहीं उठता।

मुनि श्री भीमराजजी तेरापन्थ के एक सुयोग्य विद्वान् और तर्कशास्त्री मुनि थे। समय के बड़े पाबन्द थे। उनका मधुर व्यवहार संपर्क में आनेवाले के लिए श्रद्धा का विषय बन जाता। एक बार वे किसी गांव में चातुर्मास बिता रहे थे। एक दिन किसी अन्य सम्प्रदाय के मुनि से भेंट हो गई गोशालक की चर्चा चल पड़ी।

मुनिश्री ने कहा—गोशालक को भगवान् ने दीक्षा दी थी।

मुनिजी ने कहा—नहीं! मैंने अभी भगवती सूत्र पढा है उसमे कही नहीं आया।

मुनिश्री—आप पुनः देख सकते है।

मुनिजी अपनी स्मृति के दर्प मे इतराए से बोले—देखना क्या है मुझे भली प्रकार याद है। अगर ऐसा निकल जाए तो तुम्हारी मुखपत्ती बाधकर शिष्य बन जाऊँ?

मुनिश्री खैर! मार्ग चलते-चलते मुनिजी के उपाश्रय के पास में ही दोनों आ निकले—मुनिजी ने उनको अपने उपाश्रय मे जाकर सूत्र निकाल कर दिखाया तो वही बात मिली—"सर्वानुभूति मुनि कह रहे है—हे गोशालक भगवान् ने तुझे दीक्षा दी"।

बीच ही में मुनिजी बोल पड़े—यह तो छदमस्थ मुनि कह रहे है, भगवान् ने कहाँ कहा है और ज्योंही थोड़ा आगे का पाठ निकाला गया तो वहाँ भगवान् कह रहे है—मैंने तुझे दीक्षा दी है। पाठ देखते ही मुनिजी सकपका गए बोले—मैंने तो टीका पढ़ी थी मूल पाठ नहीं देखा।

हठ पर अज्ञान का पर्दा डालने की उनकी व्यर्थ चेष्टा को समझने मे मुनिश्री को देर नहीं लगी, फिर भी वे मधुरता से बोले—"जब तक पूरा ज्ञान न हो तो आग्रह नहीं करना चाहिए।"

: १७६ :

वह साधु नहीं ठग है

कनक कामिनी कै चक्कर सू विरला ही बच पावै।
नहीं जज साहब जैन मुनि पइसै नै हाथ बढ़ावै ॥१८८॥

संसार मे साधु का रूप अधिक है गुण कम। सच्ची साधुता के दर्शन कभी-कभी होते हैं किन्तु जब होते है तो व्यक्ति की आखें उघड़ जाती हैं और उसे साधु असाधु (ठग) की भेद-रेखा समझते देर नहीं लगती।

संवत् १९९२ में आचार्य श्री कालूगणी इन्दौर पधारे। एडवोकेट वकील नेमीचन्दजी मोदी के साथ एक स्थानीय न्यायाधीश आचार्य वर के दर्शन करने आए, न्यायाधीश महोदय धार्मिक वृत्ति के थे और—"रिक्त पाणिर्न पश्येत राजानं देवता गुरुम्" की उक्ति के अनुगामी भी। एक नारियल और पाच रुपये का नोट भेंट के लिए साथ लेते आए। मोदीजी ने नारियल पहले ही दूर रखवा दिया। आचार्य श्री के दर्शन करने पर जब पाच का नोट भेंट करना चाहा तो आचार्य वर की ओजस्वी वाणी पूछ बैठी—जज साहब! क्या लाए है?

आचार्य श्री जैसे महान् संत और पाच रुपये की तुच्छ भेंट !!

जज साहब कुछ लज्जित से होकर अचकचाने लगे।

आचार्य श्री उनकी दुविधा तो ताड़ गये—जज साहब! जो रुपये लेता है उसे साधु नहीं ठग समझना! सच्चा साधु वही है जो कंचन-कामिनी का त्यागी है।

न्यायाधीश महोदय ने जीवन में पहली बार यह बात सुनी कुछ देर कानों पर विश्वास नहीं हुआ किन्तु बातचीत करने पर जब भक्ति भरे हृदय से आचार्य वर को वन्दना कर विदा हुए तो बार-बार उनके कानों मे यही ध्वनि गूज रही थी—पैसा लेनेवाला साधु नहीं ठग है।

: १७७ :

विरोध का उत्तर

निंदा के महाविष नै हजम करणियो सदा पूजावै।
देख शान्ति की नीति पंडित मन ही मन चकरावै ॥१८४॥

प्रशंसा में भी मौन और विरोध मे भी मौन यही योगी के समत्व का दर्शन है। विरोध और अपमान का हलाहल पचन करनेवाले को संसार "महादेव" के रूप मे पूजता है।

कालूगणी संवत् १९६२ मे शस्यश्यामला मालव भूमि की पदयात्रा करते हुए रतलाम पधारे। विरोधियों ने दिल खोल कर विरोध किया। नगर मे हलचल थी किन्तु इस विरोध के तूफान में कुछ व्यक्ति प्रतीक्षा की ओट लिए तटस्थ होकर देख रहे थे कि इसका क्या उत्तर आता है?

किन्तु विरोध का उत्तर कैसा ? विरोध का उत्तर मौन ही होता है। गधे की दुलत्ती का उत्तर चुपचाप बचकर निकल जाने के सिवा और क्या उचित होगा ? एक दिन सस्कृत के तीन विद्वान् आचार्य श्री की सेवामे उपस्थित हुए। वार्तालाप के प्रसंग मे आत्म-निवेदन करते हुए बोले—हमने आपके विरोध मे बहुत पढ़ा है, बहुत सुना है हम देखते थे कि आप इसका क्या उत्तर देते है ? किन्तु प्रतिकारात्मक एक पर्चा भी नहीं पाकर हमारी आत्म-श्रद्धा आपके महामहिम व्यक्तित्व के प्रति जाग उठी।

कालूगणी ने अपनी अप्रतिकारात्मक शान्ति नीति का स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया कि विरोध के बराबर मे विरोध की आग उछालनेवाले बहुत है किन्तु विरोध को अमृत समझ कर हजम करनेवाले विरले ही है।

: १७८ :

वचन का मोल

कष्ट उठाकर भी मोटा निज प्रण तू कहीं निभावै।
सहकर घोर वेदना प्रभुवर गंगापुर पधरावै ॥१९०॥

कहा जाता है वचन पालन के लिए ही रामने राज्य को ठुकरा कर वन-वन में भटकना स्वीकार किया। वचन के कारण ही हरिश्चन्द्र ने राज्य-दान करके भंगी के घर पर पानी भरा। और इसी श्रुति-परम्परा में हम इस स्मृति को जोड़ सकते हैं कि वचन के लिए कालूगणी ने प्राणों का मोह त्याग कर अत्यन्त कष्ट से विहार कर के गंगापुर चातुर्मास किया।

बात यह थी कि संवत् १९९२ में मालव-यात्रा से लौटते जावद मे आते २ आचार्यश्री कालूगणी के बाए हाथ की अंगुली में एक छोटी-सी विषैली फुनसी निकली, उसे काटा समझ कर कुरेद लिया गया बस धीरे-धीरे उसका विष फैलता गया और भीलवाड़ा आने तक तो उसकी भयंकर पीडा प्राणघातक-सी लगने लगी।

यह प्राणातक पीड़ा, भयंकर गर्मी और पदयात्रा करते हुए गंगापुर चातुर्मास के लिए जाना—भीलवाड़ा के ओसवाल, अग्रवाल, महेश्वरी आदि प्रत्येक वर्ग के समझदार का हृदय काप उठा। क्या हमारे यहाँ चातुर्मास नहीं हो सकता? सबकी यह मर्म व्यथा आचार्य वर के सामने आई। आपको इस कष्ट मे विहार नहीं करना चाहिए भले ही तेरापन्थी आम्नाय के घर यहाँ कम है किन्तु हम सभी तनमन से आपकी सेवा करेंगे। आनेवालों को पूरी व्यवस्था व सुविधा देंगे, आप कोई विचार न करें। भीलवाड़ा के नागरिकों ने आग्रह व भक्ति भरा निवेदन किया।

आचार्य वर ने गम्भीर होकर कहा—"घर कम है इसका मुझे कोई भय नहीं, तुम्हारी सेवा के बारे मे मुझे कोई शंका नहीं और यात्रियों की सुविधा व व्यवस्था की चिन्ता तो मैं करू ही क्यों? किन्तु मैंने गंगापुर का चातुर्मास कह दिया है सो जब तक वहाँ जा सकूगा तब तक तो जाने का विचार है। प्राण छूट सकता है किन्तु कहे हुए वचन को कैसे टालू?

: १७६ :

प्राण या प्रण

प्राणा सूं बढ़कर कै प्रण को होवै मोह बड़ारै।
नही दवाई ल्यू थे सगला आया खातिर म्हारै ॥२०१॥

नेता या आचार्य सस्था और समाज के लिए आदर्श होते हैं। उनके जीवन की छोटी से छोटी कमी या शिथिलता जहाँ अनेक कमजोरियों की आवृत्ति का कारण बन जाती है, वहाँ उनकी कड़ाई और निस्पृहता अनुगामियों के लिये आदर्श उपस्थित करती है।

संवत् १९९३ मे आचार्य श्री कालूगणी का भौतिक शरीर प्रमेह और प्राण-घातक अंगुली की पीड़ा के कारण अत्यन्त

क्षीण पड़ा रहा था। आचार्य श्री की बीमारी का संवाद पाकर देश के अनेक चिकित्सक, डाक्टर, वैद्य आदि दर्शन करने आए। शरीर की स्थिति देखकर आनेवाले चिकित्सकों ने अपनी-अपनी औषधियों के प्रयोग के लिये विश्वास भरे हृदय से आग्रह किया।

मनोबली आचार्यवर ने औषधि तो दूर रही किन्तु उनके उपकरण (शस्त्र) आदि भी उपयोग मे लेने से इन्कार करते हुए कहा—तुमलोग मेरे निमित्त आए हो, इसलिए तुम्हारे पास जो भी औषधि है वह सब मेरे निमित्त तो आई है ? मैं एक कण भी नहीं ले सकता।

चिकित्सकों ने जब आपत्काल मे मर्यादा का अपवाद रखने की प्रार्थना की तो आचार्य श्री के पौरुष के स्वर गूंज उठे—दो-दो तलवार बाधनेवाले क्षत्रिय की परीक्षा तो रणक्षेत्र मे ही होती है। युद्ध के समय पीठ दिखाने पर क्या उसकी तलवार को शर्म नहीं आती ? सकट के समय धैर्य और मजबूती रखने का उपदेश देनेवाला मैं स्वय शरीर के मोह मे फसकर शिथिल हो जाऊँ तो क्या मेरी साधुता को शर्म नहीं आएगी ?

देखनेवाले सभी आचार्य श्री के इस प्रण के सामने प्राण का ममत्व ठुकराने के आत्म-पौरुष और आदर्श पर दातो तले अंगुली दबा रहे थे।

: १८० :

परीक्षा का समय

मौकै पर ही चोडै आवै मानव री मजबूती।
भूल सकै कुण काम पडयो जद छोगांरी रजपूती ॥१९२॥

धीरज की परीक्षा बड़ी कड़ी होती है। भूखे की रोटी छीनने पर, गरीब का धन जाने पर, पत्नी का पति के संकट पर और माता का पुत्र के वियोग पर ही धैर्य देखा जाता है। ऐसे समय मे विवेक व ज्ञान के सहारे ही धैर्य के बांध को टूटने से बचाया जा सकता है।

आचार्य श्री कालूगणी की माता साध्वी श्री छोगाजी का मनोबल बहुत विचित्र था। जीवन की अनेक कष्ट गाथाएँ

उनके धैर्य की गाथाओं के साथ जुड़ी हुई है। कालूगणी के जन्म से ही उनके धैर्य की कसौटी होनी शुरु हुई थी, जिसका अंतिम परिपाक कालूगणी के स्वर्गवास तक सामने आता ही रहा। उनके आत्मबली व तपःपूत्त जीवन का परिचय तो इसी बात से मिल जाता है कि टाइफाइड से सक्रामक व खतरनाक रोग मे भी उनकी एकान्तर तपस्या चालु रही और पारणे मे दही व ठडा खिचड़ा खाकर भी धीरे-धीरे स्वस्थ होती रही।

गंगापुर मे जब कालूगणी का स्वर्गवास हुआ तो उनकी अवस्था ६३ वर्ष की थी। लोक-मानस मे अनेक सभावनाएं उठ रही थी अब माजी महाराज क्या करेंगी? दूसरो को धीरज बंधानेवाली अब किस प्रकार पुत्र का दुःख सहेगी?' पर उनकी इस समय की स्थिति का चित्रण आचार्य श्री तुलसी के शब्दो मे देखिए—

अश्रुपात तो आतरो, दिल गिरीपिण दूर,
भावी भाव विभावती नहीं फेर्यो निज नूर।
तिणे छाती छोगा तणी रे कहवी पड़से धन्य,
दिल दृढता वाली सती एहवी न मिले अन्य।

(छव ढालियो)'

सचमुच ऐसी घड़ियो मे ही मनुष्य के धैर्य और विवेक की परीक्षा होती है।

लोक प्रियता का मंत्र

सेवा मावी सुविनीता को रंग-टंग हुवै न्यारो।
कुण भूलै है झमकूजी को वो मीठो जी कारो ॥१९३॥

लोकप्रियता की आकांक्षा प्रायः घट-घट व्यापी हो रही है, किन्तु इसका मन्त्र बहुत कम व्यक्ति जानते हैं। डेल कारनेगी (अमरीकी विद्वान्) के अनुसार लोकप्रियता का पहला मन्त्र है, मुस्काना और दूसरा है किसी का नाम लेकर बतलाना। ये गुण कृत्रिम नहीं सहज होने चाहिए। मनोविज्ञान की पुस्तक से नहीं अनुभवी की ध्वनि से सीखने चाहिए।

स्वर्गीय साध्वी प्रमुख श्री झमकूजी की लोकप्रियता के चित्र आज भी जन-मानस पर धुंधले नहीं हुए हैं। उनकी लोकप्रियता का रहस्य इन्हीं दो बातों मे भरा है। वे हर समय प्रसन्न वदन रहती थीं। मधुर और नम्रवाणी एवं सरल और मधुर व्यवहार उनके चेहरे की प्रसन्नता पर छाए रहते। वन्दना करनेवाले के प्रति प्रायः नामोच्चार पूर्वक स्वीकृति देने की उनकी कुशलता तो आज भी "झमकूजी का जीकारा" के रूप मे प्रसिद्ध है।

ये ही उनकी लोक प्रियता के मंत्र थे।

: १८२ :

उपालम्भ के अवसर पर

तर्क फर्क मे कभी न पडकर सहो बडा की चोटा।
चोटा सू ही हुया करै है छोटा मानव मोटा ॥१९४॥

मंत्री मुनि श्री मगनलालजी स्वामी, जिनका ऐतिहासिक व्यक्तित्व तेरापन्थ के क्षितिज पर सदा चमकता रहेगा। उनका जन्म गोगुन्द (मेवाड) मे विक्रम संवत् १९२६ की श्रावण सुदी २ को हुआ। सवत् १९४३ मे मघवागणी के चरणो मे दीक्षा लेकर निरंतर तपःपूत जीवन को उज्ज्वल करते रहे। अभी माघ वदी ६ (२०१६) उन्होंने ९१ वर्ष का दीर्घजीवन पाकर समाधिमरण प्राप्त किया। वास्तव मे तेरापन्थ की विरल विभूति थे। वे कहा करते थे कि—"गुरु जब उलाहना दें तो

शात भाव से विनय पूर्वक सुनते जाना चाहिए यदि वह उचित नहीं हो तो बाद मे सही स्थिति से अवगत कराया जा सकता है। यही वह राजमार्ग है जिसके दोनों ओर शांति के वृक्षों की शीतल छाया मिलती है। अनुभव का प्राण सचार करते हुए इस बात को उदाहरण के द्वारा वे यों स्पष्ट किया करते थे।

सवत् १६५४ मे माणक गणी के स्वर्गवास के पश्चात् साधु-समाज लाडनू मे एकत्र हुआ। उन दिनों श्री कालूगणी अस्वस्थ रहने से मगन मुनि ने एक सत को दूर से बुलवाया। डालगणी के पास इस बात की सूचना पहुँच गई कि उन्हें आचार्य बनाने के लिए बुलवाया गया था। अवसर पाकर डालगणी ने मगन मुनि को इस अप्रिय बात के लिए बहुत कड़ा उलाहना दिया। वे सुनते गए, सहते गए। बाद मे मगन मुनि ने निवेदन किया यदि आप देखना चाहे तो वह पत्र आपको दिखलाऊं ? जिससे स्थिति स्पष्ट हो जाए ?

डालगणी ने ज्योंही पत्र देखा तो मन ही मन बड़ा पश्चात्ताप करने लगे। इस घटना के बाद बहुत बार सहसा उनके उद्गार निकल पड़ते—बिना सोचे समझे किसी को उलाहना देने से पीछे पश्चात्ताप करना पड़ता है।

मंत्री मुनि निष्कर्ष की भाषा में कहते—सत्य अंत मे स्वयं उभर जाता है, किन्तु समय पर धैर्य पूर्वक सुनना और सहना बड़ा कठिन होता है।

सहने के लिए है कहने के लिए नहीं

ओछा करै उदगल गमतो सदा वड़ा ही खावै।
गम के चाबुक की खाता भी मगन नहीं सकुचावै ॥१९५॥

पुरुषत्व की फलश्रुति अपमान आदि को मूकभाव से सहने में है, कहने में नहीं, विरोध और संघर्ष को हजम करने में है, उफनने में नहीं।

आचार्य श्री कालूगणी का संवत् १९७६ का चातुर्मास बीकानेर मे था। विरोध अत्यन्त भीषण और निम्नस्तर पर था। यहाँ तक कि साधु-साध्विया स्थान से वाहर जाकर वापिस लौट आने पर ही निश्चिन्त होते कि आज का दिन तो ठीक गया। एक वार मगनलालजी स्वामी बाहर जगल जा रहे थे, पीछे से आते हुए एक तागेवाले ने कस कर एक चाबुक उनकी पीठ पर ऐसा जमाया कि जैसे उसने घोड़े की ही मासल पीठ समझ ली हो।

अपनी धुन में मस्त वह ५३ वर्षीय ऋषि तागेवाले की क्रूर और गृद्ध आखों मे घटनाक्रम का इतिहास पढ़कर चुपचाप आगे चलता गया। वहुत दिनों तक यह भेद उनके होठों के बाहर नहीं आया किन्तु पीठ पर जमे चाबुक के निशान ने जब इस रहस्य को प्रकट किया तो उनके पुरुषत्व की गाथा सब के मुंह पर गूज उठी। उनका जीवन सहने के लिए था कहने के लिए नहीं।

: १८४ :

गुरु तो महान् हैं

गुरुवा रै वहुमान विनय की अट कल हुवै वड़ा नै।
वयासी वर्षां का माना वाइस वरसा का नै ॥१९६॥

महामना मंत्री मुनि मगनलालजी स्वामी कहते थे—गुरु सदा ही महान् होते हैं फिर चाहे वे छोटे हों या वड़े। लघु अवस्था की राई की ओट मे उनकी महानता का शिखर छिप नहीं सकता।

संवत् १९९३ मे जव आचार्य श्री कालूगणी ने शासन की वागडोर आचार्य श्री तुलसी के हाथों में सम्भलाई तो आचार्य श्री की अवस्था २२ वर्ष की थी। अनेक वूढ़े, वड़े विद्वान् साधु उस समय विद्यमान थे किन्तु वावीस वर्षीय युवक आचार्य के चरणों मे सभी ने वही हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा उडेल दी। जो कालूगणी के प्रति थी। मगनलालजी स्वामी की अवस्था तव ६७-६८ वर्ष की थी। वातावरण को श्रद्धामय वनाने के लिए आप साधुओ से वड़ी निष्ठा और विवेकपूर्ण भाषा मे कहते—हमारे आचार्य २२ वर्ष के नहीं ८२ वर्ष के है और जव आश्चर्य और जिज्ञासा का भाव लिए सव इसका रहस्य पूछना चाहते तो आप कहते—६० वर्ष हमारे पूर्वाचार्य के और २२ वर्ष आपके। आप सदा ही वड़े है गुरु कभी छोटा नहीं होता।

मेरे हाथ में तो मेरा गेड़िया है

समझदार सत्ता पाकर भी रहै सदा ही न्यारो।
म्हारै कर में तो है भाई सिर्फ गेड़ियो म्हारो ॥१९७॥

अधिकार के फल के साथ अभिमान का कीड़ा रहता है जो फल में सडाध पैदा करता रहता है। कोई बिरला ही सच्चा अधिकारी मिलता है जिसे अपने अधिकार का मान व नशा नहीं होता, वह सदा अपने आपको सर्वसाधरण से अधिक नहीं मानता और तभी दुनिया उसे महान् मानती है।

मन्त्री मुनि के विषय में यह उक्ति थी कि वे शासन के स्तम्भ है। उनकी इच्छा का मान स्वयं आचार्य श्री भी करते ? किन्तु वे अपने आपको साधारण साधु की भूमिका से ऊपर प्रदर्शित नहीं करते।

एक वार एक श्रावक ने आचार्य श्री से अपनी सिफारिश करवाने के लिए मन्त्री मुनि से बार-बार निवेदन किया, किन्तु मन्त्री मुनि का उत्तर होता मैं क्या कर सकता हूँ भाई! आचार्य श्री से प्रार्थना करो ?

श्रावक—महाराज! सारा काम आप ही के हाथ में है।

मन्त्रीमुनि वडे सहज और विनोदी ढंग से बोले—मेरे हाथ में तो मेरा गेड़िया है। श्रावक उनका निस्सग और निरभिमान उत्तर पाकर गद्‌गद होकर चरणों में झुक पड़ा।

: १८६ :

कर्तृत्व का समपर्ण

मोटा ऊंचा चढ़ै वढै ज्यूं नरमाई भी ग्वासी।
अरे! मगनजो जिसा केइ होग्या केइ हो ज्यासी ॥१९८॥

कर्तृत्व का अभिमान व्यक्ति को ऊपर नहीं उठने देता। ऊपर चढ़ने के लिए लाघव चाहिए और वह मिलता है गुरु चरणों में कर्तृत्व का समपर्ण और अस्तित्व का विलय करने से।

एक वार मन्त्री मुनि से कहा गया—आपका नाम तो शासन में अमर है। वे तत्क्षण आत्मगोपन करते हुए वोले—नहीं भाई! अमर नाम तो आचार्यों का रहता है, और रहेगा। मगन जी जैसे तो कई हो गए और हो जाएंगे कौन पूछता है मगन जी को? मुझपर तो गुरुदेव की कृपा है और मेरे मे क्या धरा है?

वास्तव में जो अपने को लघु मानता है वही वड़ा वनता है।

: १८७ :

विजय का तरीका

द्वेषी नैं भी महापुरुष वत्सलता सू समझावै।
मानव के वत्सलता सू पत्थर भी झट झुक ज्यावै ॥ १९९ ॥

जिस प्रकार तेज बुखार को वर्फ की पट्टी से उतारा जाता है ठीक उसी प्रकार विरोधी की उग्रता भी प्रेम पूर्ण मधुर व्यवहार से जीती जा सकती है, मंत्री मुनि के ,जीवन का यह सहज सूत्र था।

एक बार सरदार शहर में एक भाई आए जो पहले अच्छे तत्त्वज्ञ श्रावक थे, पर बाद मे कुछ कारणों से एक प्रतिक्रियावादी रुख अपनाकर विरोधी बन गए, मन्त्री मुनि से उन्होंने कहलाया मैं आपके दर्शन करके कुछ बातचीत करना चाहता हूँ। मन्त्री मुनि ने सहजतया कहा—कोई ना नहीं है।

पर वह स्थान के बाहर खडा था उसने फिर कहलाया—"मैं आपके ठिकाने में प्रवेश नहीं करना चाहता"।

मन्त्री मुनि ६० वर्षीय महास्थविर थे। उन्हें हिलने चलने मे संक्लेश होता था किन्तु फिर भी वे तत्काल कुर्सी में बैठकर साधुओं के सहयोग से बाहर आए—उनकी इस महान् उदारता पर उनके प्रशंसक ही नहीं वह विरोधी भी गद्‌गद् हो उठा। उनके निकट बैठकर जब वह अपने मन की नरम-गरम कहने लगा तो मन्त्रि मुनि ने उसे एक ही शब्द कहा—"तेरे जैसे श्रावक का यह व्यवहार ?"

उनके इसी प्रश्न पर जैसे वह लज्जित सा होगया। जिनके दिल मे मेरे प्रति अभी भी इतनी आत्मीयता है। बोले भी क्या ? वह तो श्रद्धा से नत था।

: १८८ :

सलाह और सहयोग

सलाहकार करड़ी कंवली राह देतो नहि सकुचावै।
पण मान्यां नहीं मान्या किंचित् नहीं नाक सल ल्यावै ॥२००॥

मंत्री मुनि मगनलालजी स्वामी के जीवन में दो विलक्षण गुण थे, चिन्तन की सूक्ष्म प्रज्ञा और व्यवहार की कुशल प्रक्रिया। उनका जीवन सूत्र था अपने विचार आचार्य से निवेदन करना हमारा कर्त्तव्य है पर मनवाने का आग्रह नहीं होना चाहिए। निवेदन करने के बाद आचार्य जैसा उचित समझे वैसा करें, हमें उसमें सहयोगी बनना चाहिए।

बात संवत् २००५ की है आचार्य श्री का चातुर्मास छापर में था। सरदारशहर मे एक बहन लाड़कुंवर बाई ने संथारा

(अनशन) कर रखा था और अनशन मे दीक्षा लेने की उसकी प्रवल इच्छा थी। भावना की प्रवलता और वैराग्य की तीव्रता ने अभिभावकों को आचार्य श्री से निवेदन करने के लिए वाध्य कर दिया अभिभावकों ने छापर आकर आचार्य श्री के चरणों मे वस्तु स्थिति को देखते हुए भक्ति भरा आग्रह किया—श्रावकों के विनय पर आचार्य वर का दिल पिघल गया और मंत्री मुनि से परामर्श लिया। मंत्री मुनि ने नम्र शब्दों में निवेदन किया—मुझे तो उचित नहीं जचता ! आचार्य श्री ने स्थिति को स्पष्ट किया और अनेक तर्क वितर्क से इसका औचित्य वतलाया पर अनेक उलझनों को सामने रखते हुए मंत्री मुनि ने अपना पूर्व निर्णय फिर दोहराया। समय ज्यो-ज्यों गुजरता गया श्रावकों ने शीघ्रता की आचार्य वर ने वार-वार मंत्री मुनि की सम्मति जाननी चाही। किन्तु उनका वही उत्तर था मुझे ठीक नहीं जचता, वाकी आपकी मर्जी हो तो आदेश दे दीजिए…।

आचार्य श्री ने दीक्षा का आदेश दे दिया अब लगे मंत्री मुनि श्रावकों को दीक्षा-विधि समझाने। कार्यक्रम को सानन्द सम्पन्न करने की सूचनाएं देने। श्रावक और स्वयं आचार्य श्री भी उनकी विलक्षणता पर चकित थे। दो क्षण पहले जिनकी सम्मति भी नहीं थी वे अब ऐसे सहयोगी वने कि जैसे उन्हीं के आग्रह पर यह सब कुछ हुआ हो। वास्तव में यही उनके मन्त्रीत्व का चमत्कार था।

: १८६ :

अधिकार को पचाने वाले

हुवै वड़ा की बकशीसां तो माथै चाढ़ण तांई।
पा अधिकार गर्व नहीं ल्यावै है उणरी अधिकाई ॥२०१॥

अधिकार को प्राप्त करने की तड़फ आज बहुत है। उसका दुरुपयोग भी बहुत किया जाता है। इसलिए अधिकार आज सुफल नहीं ला रहा है। किन्तु अधिकार पाकर उसको हजम करने वाले कोई विरले ही होते हैं।

संवत् २००५ की बात है मुनिश्री मगनलालजी अपने ७६ वर्ष के जीवन में पहली बार आचार्य चरणों से अलग विहार करके बीदासर पधारे। वहाँ पर बंगाली डाक्टर मन्मथ बाबू की होमियोपैथिक चिकित्सा शुरू की। डाक्टर ने कहा—सर्दी का मौसम है आप तख्त पर या चोकी पर सोइए, जमीन पर नहीं।

यों मंत्री मुनि को आचार्य श्री के निकट भी जोड़ी पर सोने की विशेष आज्ञा थी, पर आज तक कभी सोए नहीं। उन्हें चौकी पर सोना बड़ा अटपटा लगा। पुन· पुनः आग्रह करने पर भी वे राजी नहीं हुए। तो मुनि श्री सुखलालजी एवं सोहनलालजी ने निवेदन किया—आप क्यों संकोच करते हैं आपको तो आचार्य वर की बख्शीश है।

मंत्री मुनि अनुभव वाणी मे बोले—अरे भाई ! आचार्यों की सभी बख्शीशें काम मे लेने के लिए नहीं, शिर चढ़ाने के लिए होती है।

उनकी अनुभूति की तीव्रता का संस्पर्श पाकर हृदय में चैतन्य हो उठा, वास्तव मे अधिकार और बख्शीशें उन्हें ही मिलती हैं जो उन्हें एक धरोहर के रूप में सुरक्षित रखते हैं।

: १६० :

ये विचित्र साधक

तप सेवा शांति की सुखकर बहती सदा त्रिवेणी।
घोर तपस्वी सुख मुनि की है के के बाता कहणी ॥२०२॥

मनुष्य जीने की आशा लगाए बैठा रहता है और अचानक मृत्यु आकर उसे दबोच लेती है, वह असमर्थ होकर भी सौ वर्ष जीना चाहता है, मृत्यु से भय खाता है। मृत्यु से लड़कर प्राणों का उत्सर्ग करनेवाला कोई जितात्मा शताब्दियों में विरला ही होता है!

घोर तपस्वी मुनि श्री सुखलालजी का स्मरण होते ही चलचित्र की भाँति अनेक दृश्य स्मृतिपट पर उतर आते हैं। उनका जन्म मेवाड़ की पथरीली भूमि मे सं० १६५६ की माघ शुक्ला तीज को गोगुन्दा में हुआ। बारह वर्ष की लघुवय में राजलदेसर में आचार्य श्री कालूगणी के चरणों में उनका दीक्षा संस्कार हुआ।

सेवा, तपस्या और स्वाध्याय उनके जीवन के रंगमंच के तीन महत्त्वपूर्ण दृश्य थे। सेवामे उन्होने कभी स्व पर का भेद नहीं किया। उनका जीवन तपस्यामय था ही ४६ वर्ष के साधना-काल मे उन्होंने कुल दिन हर ६२४५ (वर्ष १७ महीना ४ दिन ५) तपस्या में विताए।

१०६, १२१ और १८० दिन तक पानी नहीं पीना भी उनकी साधना के विचित्र प्रयोग थे। वि० सं० २००० से इन सत्रह वर्षों मे निरन्तर आतापना लेते, ऊपर में ३।५ घण्टा तक की आतपना चलती जिसमे हजारो गाथाओं का स्वाध्याय भी करते। स्वाध्याय उनकी साधना का सहचर था। जीवन के अन्तिम दिनों में ८।१० हजार आगम गाथाओ की स्वाध्याय का उनका निय क्रम था। कठोर तपश्चर्या के वाद अन्त में २१ दिन का संथारा भी उनका वड़ा चमत्कारिक हुआ। २४ वर्ष पूर्व लिया गया संथारा समय आने पर एक अजव उत्साह और तत्परता के साथ स्वीकार करके उन्होंने संसार के समक्ष मृत्यु से जूझने का एक विचित्र उदाहरण रखा। दृढ़ संकल्प निष्ठा, अद्भुत सेवा साधना, सहज क्षमा और उग्र तपस्या का स्वर्ण संयोग ही उन्हें सही माने मे घोर तपस्वी सिद्ध करता है। अभी फाल्गुन वदी ४ सं० २०१६ को आचार्य श्री के सान्निध्य में उन्होंने समाधि पूर्वक पडित मरण प्राप्त किया।

: १६१ :

श्रद्धा का समर्पण

कहो सिंह के बच्चे ने भी कुण छोटो कर मान ।
तरुण तपस्वी तुलसी ने सब कालू ज्यूंही जाणे ॥२०३॥

जहां आत्म-साधना की लगन होती है वहां पद और अधिकार का ममत्व नहीं होता। धर्म-संघ की महत्ता इसी में होती है कि वहां श्रद्धा का बल और गुरु चरणों में आत्मार्पण की वृत्ति होती है।

सं० १९९३ में जब आचार्यवर कालूगणी ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में आचार्य श्री तुलसी का निर्वाचन किया तब आचर्य श्री तुलसी गणी की अवस्था २२ वर्ष की थी, जैन परम्परा के इतिहास में सम्भवतः यह पहली घटना थी जब एक सुविशाल श्रमण-संघ का नेतृत्व बावीस वर्षीय सुदृढ़ हाथों में सौंपा गया था।

संघ मे अनेक तपे हुए विद्वान्, अनुभवी और योग्य मुनि विद्यमान थे। उनके ऊपर एक बावीस वर्षीय आचार्य का नेतृत्व जहाँ अन्य सम्प्रदाय के व्यक्तियों के समक्ष एक कौतूहल था, आश्चर्य था, वहाँ शासन के विचारक और विद्वान् मुनि गण की सुदृढ श्रद्धा का एक परीक्षण भी। संघ ने हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा भक्ति और निष्ठा को बटोर कर आचार्य चरणों मे उसी निष्ठा के साथ अर्पित किया जिस प्रकार कि पूर्वाचार्य कालूगणी के चरणों में।

आत्म-साधकों की परम्परा में पद और अधिकार का कोई प्रश्न नहीं होता, वहाँ श्रद्धामय अर्पण होता है यह संसार के समक्ष स्पष्ट हो गया।

: १९२ :

अडता से टलता रहै

अड़तै सूं टलतो रहणै मैं समझदार हित जाणं।
चोक रागडी अड़ी कडी मैं विजय वरी वीकाणे ॥१९२॥

अहिंसा का पुजारी अहं को ठुकरा कर मैत्री भावना वरता है, द्वेष और विग्रह की खतरनाक टक्कर में भी वह क्षमा और महानता का आदर्श लिए बच निकलता है "अड़ता से टलता रहे जलता से जल होय" से ही उसकी विजय-याग का पथ प्रशस्त बनता है।

सवत् १६६४ मे वीकानेर के तत्कालीन नरेश महाराजा गंगासिंहजी की स्वर्ण जयंती मनाई जाने वाली थी। दरवार के हृदय मे तेरापन्थ शासन के प्रति वहुत वड़ी श्रद्धा थी। आचार्य वर कालूगणी के स्वर्गवास के अवसर पर तो उन्होंने समूचे वीकानेर स्टेट में बन्दी रखकर अपनी भक्ति का परिचय भी दिया था। हाँ तो उन्हीं के विशेप अनुरोध पर आचार्य श्री तुलसी गणी ने अपना पहला चातुर्मास वीकानेर किया। चातुर्मास कई दृष्टियों से वहुत महत्वपूर्ण रहा, वहाँ एक साथ ३१ दीक्षाएं हुईं जो तेरापन्थ के इतिहास की पहली घटना थी।

मृगसर वदी एकम आई, मध्याह्न में विहार हुआ। जयघोप से दिग् दिगन्त मुखरित करती हुई नगर के तथा आस-पास के हजारों श्रद्धालु नर-नारियों की भीड़ के आगे-आगे आचार्य श्री तथा साधु चल रहे थे। कोटवाली दरवाजे की ओर बढ़ता हुआ जुलूस रागडी चोक की नुक्कड़ पर पहुँचा। उधर से यहीं अवस्थित स्थानकवासी युवाचार्य (गणेशीलालजी) साधु साध्वियों तथा हजारों नरनारियों की भीड़ साथ लिए आ रहे थे।

संकड़ी गली मे दोनों ओर के जुलूस जैसे परस्पर मे भिड़-कर राम-रावण के युद्ध का दृश्य उपस्थित कर देंगे—ऐसा स्पष्ट लगने लगा। उधर से जोशीले तथा आक्षेपात्मक नारों से उछलते-मचलते लोक जोर-जोर से पुकारते आ रहे थे—हटो! हटो!

आचार्य श्री ने बड़े धैर्य और दूरदर्शिता का परिचय देते हुए तत्काल अपने साधुओं को एक ओर हटकर खड़े रहने का आदेश दे दिया।

कुछ श्रावकों का नया खून उबलने लगा—हम क्यों हटें, हमे क्या जरूरत है? आचार्य श्री ने उन्हें समझाते हुए कहा—जरूरत मुझे है। विहार-यात्रा को रणयात्रा का रूप नहीं देना है। आचार्य वर के इंगित पर श्रावक श्राविकाएं भी एक ओर हट गए। सामने वाले जुलूस को रास्ता मिल गया और अपनी मस्ती से निकल गया।

मार्ग साफ होने पर आचार्य श्री ने विहार किया। विरोधी से विरोधी मानस भी इस प्रतिक्रिया से अछूता नहीं रह सका कि अगर आचार्य श्री तुलसी ने सूझबूझ से काम नहीं लिया होता तो खून की नदी बहने मे कोई शक नहीं था।

आचार्य श्री की शाति नीति की सुन्दर प्रतिक्रिया उनकी विजय-यात्रा के प्रथम चरण के रूप मे सिद्ध हुई।

: १६३ :

भूल तो भूलने के लिए हैं

भूला नै तो भूल्या सू ही खमत सामणा होवै।
इम समझा तगड़ै झगड़ै ने जड़ा मूल सू खोवै ॥२०५॥

सरलता और मैत्री के लिए पहला चरण है अपराध को भुलाना। जब तक मन सरल नहीं होता, विगत भूलों को नहीं भुलाया जाता तब तक मैत्री का आरम्भ नहीं हो सकता। इसीलिए आचार्य श्री का संदेश होता है—भूल तो भूलने के लिए है।

सवन्त १६६६ में आचार्य श्री तुलसी गणी का चातुर्मास चूरू हुआ। प्रातः व्याख्यान मे पद्मानन्द महाकाव्य पर प्रवचन चलता था। भरत बाहुबलि युद्ध के वर्णन की पूर्णाहुति पर सहजतया आचार्य श्री ने एक जागरण सदेश देते हुए कहा कि इन दोनो भाइयों का युद्ध तो समाप्त हो गया है, किन्तु सोलह वर्ष से फैला हुआ यह देशी विलायती का सघर्ष जिसने बाप, बेटे और मा, बेटी को बिछुडाकर एक प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे खड़ा कर दिया है, न जाने इसकी अन्त्येष्टि कब होगी ?

जब तक अभिमान का काटा हृदय से नहीं निकलता "थारी म्हारी हल्की भारी" की आग को बुझाकर 'पुरानी भूलो को नहीं भुलाया जाता' तब तक मन सरल नहीं होता। और न सच्चे "खमत खामणे" ही, बड़ा वही है जो भूल को भुलाकर क्षमा करता है।

समय की बात श्रावकों को लग गई, थोड़े से प्रयत्न से ही दोनों पक्षों के महारथी व्याख्यान में खड़े हुए और थली प्रदेश व्यापी जाति-संघर्ष की जड जहाँ से शुरू हुई वहीं पर उसका अन्तिम संस्कार करने का निर्णय करके परस्पर सद्भाव और सरलतापूर्वक क्षमायाचना की, और "भूल तो भूलने के लिए ही है" के आचार्य वर के प्रेरक वाक्य को श्रावक जन ने सुफल करके दिखा दिया।

: १६४ :

ये मेरे हाथ पैर हैं

हाथ पैर सम हुवै सुगुरु रै साध साधवी सारा।
पूरो भोजन किया करूं जद कष्टां में मुनि म्हारा ॥२०६॥

कुशल नेता अनुगामियों की सम्पूर्ण श्रद्धा लिए चलता है, और श्रद्धा तब मिलती है जब माला के धागे की तरह सभी आत्मीयता के एक सूत्र में बन्धे रहते हों। बहुत बार आचार्य श्री के शब्द निकलते हैं—ये सारे साधु-साध्वियां मेरे हाथ पैर हैं, गति और प्रगति के सहयोगी हैं ! सहकर्मी हैं !!

सौराष्ट्र कुछ वर्षों से तेरापन्थी मुनियों का विहार-क्षेत्र हुआ ही था। जैन भूमि होने पर भी वहाँ तेरापन्थी श्रावक-

श्राविकाओं की संख्या अत्यल्प थी। इतर सम्प्रदाय के घोर असहयोग और विरोध का सामना करके भी अनेक कष्ट सहकर तेरापन्थी संतों ने वहाँ बिहार किया। धर्म-प्रचार के लिए किया गया उनका आत्मोत्सर्ग संघ की नींवों में फौलाद बनकर सदा स्मरणीय रहेगा। संवत् २००५ में मुनिश्री घासीरामजी, मुनिश्री डूंगरमलजी तथा साध्वीश्री रूपाजी के चातुर्मास सौराष्ट्र में थे। जैन समाज में एक हलचल मच गई। विरोध का भूचाल उठ खड़ा हुआ। साधुओं को ठहरे हुए स्थानों से निकाल दिया गया। चातुर्मास के लिए स्थान मिलना दुर्लभ हो गया। गोचरी सम्पर्क आदि हर विषय में असहयोग करने मे उन्होंने कुछ बाकी नहीं रखा।

आचार्य श्री का विराजना जब बीदासर में था। सौराष्ट्र की इस परिस्थिति पर आचार्य श्री ने ऊनोदरी तप एवं विगय-परिहार करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों के बाद वहाँ की स्थिति में सहसा परिवर्तन आने लगा। जब स्थिति सुधरने लगी आचार्य वर ने अपने इस गुप्त तप की चर्चा की। साधु-साध्विया चकित थे, आचार्य श्री ने हृदय की वत्सलता के द्वार खोलते हुए कहा—"जब मेरे साधु-साध्विया धर्म-संघ की प्रभावना के लिए कष्टों में से गुजर रहे है तब मैं सुख से नींद कैसे ले सकता हूँ? वे भी तो मेरे अवयव है, उनकी पीड़ा मेरी पीड़ा है, उनकी खुशी मेरी खुशी है।

: १६५ :

शांति कैसे मिलेगी ?

विश्व शान्ति की वाता भारी हो रही च्यारां कानी।
पर धन की मृगतृष्णा में ही फसग्या भोला प्राणी ॥२०७॥

यह सच है विश्वशांति की पुकार आज जितनी प्रखर हो रही है सम्भवतः इतिहास मे पहले कभी नहीं हुई होगी, और यह भी सच है कि संसार शान्ति के मार्ग से जितना दूर आज भटक रहा है उतना पहले नहीं भटका होगा। शांति के नाम पर वह उन शक्तियों को जुटा रहे हैं जिनमें हर समय अशान्ति के स्फुलिंग उछलते है। शान्ति का वास्तविक मार्ग अभी उसके सामने स्पष्ट नहीं हुआ है।

आचार्य श्री तुलसी गणी अणुव्रत का घोष लेकर जन-जागरण करते हुए दिल्ली पधारे। विदेशी विद्वान् व राजनीतिज्ञों से सम्पर्क का तांता जुड़ रहा था। एक अमेरिकन विद्वान् आचार्य श्री के संपर्क में आया और उसका पहला प्रश्न हुआ। महाराज! शान्ति कैसे मिल सकती है?

आचार्य श्री की भाव-भंगिमा पर एक मन्द हास्य देखकर विद्वान् अपने प्रश्न पर कुछ सहम-सा गया। आचार्य श्री बोले—अब भी आप नहीं समझे कि शान्ति कैसे मिल सकती है?

नहीं!

संसार के धनकुबेर देश का विद्वान् एक अकिंचन भिक्षु से आकर पूछता है कि शान्ति कैसे मिले, इसका अर्थ तो सीधा सा यही होता है कि धन से या वस्तुओं की उपलब्धि से शांति का मार्ग है—त्याग! आवश्यकता का अल्पीकरण! और इच्छा का संयम!!

विद्वान् की आत्मा समाधान पाकर प्रसन्न हो उठी।

: १९६ :

भगवान् का अमर संदेश

मिलै ईंट को उत्तर पत्थर सूं बहु देणै वाला।
पर विरला ही मिलै शत्रु ने मित्र समझणै वाला ॥२०८॥

दुश्मन के साथ सज्जनता का व्यवहार करना एक सामान्य नीति है परन्तु दुश्मन को भी दुश्मन नहीं मानना एक आदर्श सिद्धान्त है। प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भाव का समर्पण ही प्रेम का विशुद्ध परिचायक माना जाता है। किसी भी धर्म की तेजस्विता और महत्ता इसी मे है कि वह प्राणी जगत् पर प्रेम कितना अर्पण करता है।

आचार्य श्री तुलसी गणी के सान्निध्य में विचार गोष्ठी का कार्यक्रम चल रहा था। एक पादरी महोदय ने अपने धर्म की महानता प्रकट करते हुए कहा—विश्व के सभी धर्म प्रवर्त्तकों ने सज्जन के साथ सज्जनता और दुष्ट के साथ दुष्टता की नीति का समर्थन किया है, किन्तु हमारे ईशा महाप्रभु ने कहा है कि तुम शत्रु के साथ भी मित्रता का व्यवहार करो।

आचार्य श्री ने अपना प्रवचन करते हुए कहा—आपके ईशा ने शत्रु के साथ मित्रता करने की बात कही है किन्तु हमारे प्रभु महावीर ने कहा है—किसी को शत्रु समझो ही मत! प्राणी मात्र तुम्हारा मित्र है। पादरी महोदय का धर्म-दर्प शांत हो गया, और महावीर के इस अमर सन्देश के प्रति श्रद्धा स्निग्ध हृदय से झुक गए।

: १६७ :

विरोध में विनोद

मान विनोद विरोध हुवै विरला ही सहणै वाला ।
कदम कदम पर होता पोस्टर पग नहीं होता काला ॥२०९॥

विरोध में घबराकर आत्म-संतुलन खो देना मानसिक दुर्बलता का लक्षण है। इच्छा-शक्ति के धनी आत्म-निष्ठ व्यक्ति विरोध को भी विनोद का रूपक बना देते है, वे प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न और निर्भय रहते है।

सं० २०१० में आचार्य श्री तुलसी गणी का चातुर्मास जोधपुर में हुआ। कार्तिक महीने में वहाँ दीक्षा-समारोह का आयोजन था। कुछ विरोधी तत्वों ने इस बहाने अपनी क्षुद्र वृत्तियों का पोषण करने का अवसर देखकर नगर में विरोध की चिनगारियां उछालनी शुरू की।

हर गली और दीवार पर बड़े-बड़े पोस्टर चिपकाकर दीक्षा विरोधी बातें लिखी गई। पीचकी सड़कों को भी पोस्टरों से जैसे जड़ दिया गया था।

आचार्य श्री दीक्षा देने के लिए दीक्षा-स्थल पर पधारे। दीक्षा-समारोह सानन्द सम्पन्न होने के बाद आचार्य वर ने विरोधियों पर एक मधुर व्यंग कसते हुए कहा—इन भाईयों ने हमारा कितना प्रचार किया है और तो क्या इन पीचकी सड़कों पर नंगे पैर चलने से पैर जो काले होते थे उनसे भी जगह-जगह पोस्टर चिपकाकर हमें कुछ बचा ही दिया। यदि ये कदम-कदम पर चिपकाए गये होते तो हम समूचे ही बचजाते।

विरोध को विनोद में बदलकर उन्होंने विरोधियों के दमतोड प्रयास को चुटकी में उड़ा दिया।

: १६८ :

पैर में दर्द

बड़ा हदा भय राखै दिल में अघ को हर डग डग में ।
रुक रुक कर कै क्यू चालो हो दर्द हुयो के पग मैं ॥२१०॥

साधु-जीवन एक साधना है। उसका हिलना, चलना, खाना, पीना और बोलना सभी साधना है। उनमें अहिंसा और कर्त्तव्य की भावना रहती है।

सं० २०१३ में आचार्य श्री तुलसी गणी अपनी ऐतिहासिक दिल्ली यात्रा से लौटते हुए पिलानी आए। पिलानी में उनका तीन दिनका प्रवास बहुत ही महत्वपूर्ण रहा। वहाँ से विहार करके आचार्य श्री आगे जा रहे थे। साथ में जुगलकिशोरजी बिड़ला चल रहे थे। चलते-चलते जब बातचीत के प्रसंग में आचार्य श्री को बोलना पड़ता तो वे अपना कदम थाम लेते। पुनः-पुनः रुककर कदम धरने का कारण क्या है? बिड़लाजी के मन में शंका हुई, आचार्य श्री से पूछा—क्या आपके पैर में दर्द है?

नहीं।

तो आप रुक रुक कर क्यों चलते हैं?

आचार्य श्री ने इसका मर्म बतलाते हुए कहा—हम जैन मुनि चलते समय बोल नहीं सकते ऐसा हमारा नियम है इसे जैन भाषा में "इर्या समिति" कहा जाता है जिसका अर्थ है आगे की भूमि देख-देखकर चरण उठाना और चलते समय बातचीत आदि नहीं करना।

बिड़लाजी—बहुत सुन्दर! यह नियम तो बहुत अच्छा है आप अपने नियम के प्रति बहुत सतर्क हैं।

ठंडे को क्या डर ?

है समता में धर्म शान्त नै खोटो नहीं बिगाड़ै।
देखो सन्तां! निम्बू रस भी गर्म दूध नै फाड़ै ॥२११॥

जहाँ शान्ति का शीतल जल छाता है, मन और आत्मा में सरसता होती है वहाँ बाह्य अशान्ति और उग्रता विकार पैदा नहीं कर सकती।

संवत् २०१५ में आचार्य श्री तुलसी गणी ने उत्तर प्रदेश की सुदीर्घ यात्रा की। एक दिन आहार के समय में आचार्य श्री के समक्ष एक ओर दूध पड़ा था और एक ओर नीबू (पकाया हुआ)। दूध और नीबू को एकत्र देखकर आचार्य वर को वह कहावत याद आ गई कि दूध को नीबू फाड़ डालता है।

आचार्य श्री ने इस बात को प्रायोगिक रूप में देखना चाहा। दूध को ठंडा करके उसमें थोड़ा-सा नीबू का रस डाला। दूध ज्यो का त्यों रहा। फटा नहीं, देखने वाले कहावत की सत्यता पर संदिग्ध से हो रहे थे कि एक मुनि ने कहा—दूध ठंडा है इसलिए नहीं फटा।

आचार्य वर के दार्शनिक चिंतन ने, तत्क्षण इसको दर्शन की भाषा देते हुए कहा—ठीक है। ठंढे को कोई खतरा नहीं होता। ठंडी प्रकृति वाले मे कोई विकृति पैदा नहीं कर सकता।

जीवन के इस शाश्वत सत्य के प्रति सभी एकमत थे।

: २०० :

पढ़ने वाला चाहिए

मूल मूल नै फल फूलां नै सींच्या होवै हाली।
पण नर को संहार हुया कुण गीता पढणै आली ॥२१२॥

संसार आज भविष्य की चिन्ता में दुबला हुआ जा रहा है। एक ओर सत्ता और अधिकारों के विस्तार के लिए वह विध्वंसक आणविक शस्त्रों का आविष्कार करने में संलग्न है और मकान, बांध, रेलवे आदि नव निर्माणों में जुटा हुआ है। पर इस बीच में आदमी का क्या होगा इसकी चिन्ता किसीको नहीं है और बिना आदमी के उनका उपयोग कौन करेगा, यह प्रश्न भी आज अछूता-सा पड़ा है। तत्व-चिन्तकों की दृष्टि में इसीका महत्त्व है।

प्रशस्ति

दो हजार सोलह की आई पावन पार्श्व जयंती।
रची छन्न "शासन सौरभ" शुभ सगला नै मन गमती ॥२१३॥

"शासन सौरभ" की रचना आश्विन की शरद् पूर्णिमा को प्रारम्भ कर के पार्श्व जयन्ती (पोष बदी १०) के दिन महामना मत्री मुनि के सान्निध्य में सम्पन्न हुई।

इसकी घटनाओं को कालक्रम (आचार्य काल) के अनुसार लिपि-बद्ध करके "इतिहास के बोलते पृष्ठ" के रूप मे चूरू में मुनि श्री सोहनलालजी के सान्निध्य में पूर्ण किया है।